बाईसवीं सदी

राहुल सांकृत्यायन

किताब महल

प्रथम संस्करण : १९५२

षष्ठम संस्करण : १९८३

मुख्य वितरक :

१. **किताब महल एजेन्सीज,**
८४ के० पी० कक्कड़ रोड
इलाहाबाद–१

२. **किताब महल डिस्ट्रीब्यूटर्स,**
२८–नेताजी सुभाष मार्ग,
नई दिल्ली–२

३. **किताब महल एजेन्सीज,**
अशोक राजपथ, पटना

४ **किताब महल एजेन्सीज,**
सेण्ट्रल बाजार रोड,
रामदास पेठ, नागपुर

मूल्य : छह रुपये

प्रकाशक : किताब महल, १५ थार्नहिल रोड, इलाहाबाद।

मुद्रक : सरस्वती ऑफसेट प्रिन्टर्स, इलाहाबाद।

दो शब्द

सन् १६१८ ई० का अप्रैल या मई का महीना था। रात्रि के शेष प्रहर में विश्व बन्धु का यह भ्रमण-वृतान्त स्वप्न और जागृत दोनों अवस्थाओं में नहीं कहा जा सकता कि किस अवस्था में दृष्टिगोचर हुआ। उसी समय क्रमानुसार इसका एक संक्षिप्त विवरण लिख लिया गया था; किन्तु समयाभाव से उसे विस्तारपूर्वक प्रकाशनोपयोगी न किया जा सका था। वह संक्षिप्त विवरण एक मित्र की असावधानी से खो गया। कितने ही समय तक प्रतीक्षा करने पर भी जब उसके मिलने की आशा बिल्कुल न रही, तब स्मृति से जहाँ तक हो सका, बहुत संक्षेप में यह निबन्ध हजारी बाग जेल में ६-२-२४ से लिखा गया। यद्यपि मूल अंशों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ होगा, किन्तु बाहरी बातों में अनेक हेरफेर होना बिल्कुल सम्भव है।

किस अभिप्राय से यह पुस्तक लिखी गई, एवं कहाँ तक इसमें सफलता हुई, यह पाठकों ही पर छोड़ा जाता है।

राहुल सांकृत्यायन

विषय-सूची

लम्बी नींदका अन्त

ओह, इतना परिवर्तन ! यहाँ इतने मोटे-मोटे वृक्ष पहले कहाँ थे ? यह बड़ी चट्टान भी तो यहाँ नहीं थी । तब यह आई कहाँ से ? हाँ, उस शिखर से टूटकर आई मालूम पड़ती है; लेकिन इस ऊँची चट्टानके बीचमें आजानेसे यह बागमतीमें नहीं गिर सकी । पर वहाँ से आई कैसे, राहमें बड़े-बड़े वृक्ष जो हैं ? तो ज्ञात होता है, ये वृक्ष पीछे उगे हैं । और ये आकृतिसे सौ वर्ष पुराने मालूम होते हैं । तो क्या मुझे आये इतने दिन हो गये—ओह-हो ! हाँ, मुझे स्मरण हो रहा है, मैं फरवरी १९२४ में यहाँ आया था । यदि तबसे १०० वर्ष बीते, तो अब २०२४ होना चाहिये ।

ओह ! अब यहाँसे उतरना भी मुश्किल है । बागमती हाथों नीचे चली गई । यहाँ वह किनारेवाली चट्टान भी नहीं है । जिस खुड्डीसे चढ़कर मैं यहाँ आया था, वह भी पानी के बहनेसे नाली-सी हो गई । किन्तु, हाँ, पर्वतराजका यौवन तो और भी बढ़ गया है । चारों ओर हरियाली ही हरियाली उग आई है । और झरना ! — अरे, यह तो एक छोटा-सा प्रपात ही हो गया ! वाह-वाह ! उधर तो और भी कई झरने आस-पास दिखाई देते हैं । पर बागमतीका 'कल-कल' तो वही है । दो-एक चट्टानोंके हटने और कुछ नीचे चले जानेके अतिरिक्त इसमें और कोई हेर-फेर नहीं हुआ है, किन्तु पहले का वह किनारेवाला वृक्ष नहीं दीख पड़ता । सचमुच मेरे परिचित एक भी वृक्ष यहाँ नहीं हैं । जब यहाँ इतना परिवर्तन है, तो बस्तियों में न जाने क्या हुआ होगा ? बड़ा कौतूहल हो रहा है । देखना चाहिये, मानव-संसारने क्या-क्या रूप बदले हैं । रास्ता भीमफेरी होकर गया था । वहाँ कुछ लोग जरूर होंगे । उनसे भी कुछ पता लगेगा ।

यह विचारते हुए मैंने अपनी चिर-सहयोगिनी गुफासे बिदा ली। ३५-३६ हाथ ऊपरकी अपनी गुफासे नीचे आनेमें मुझे बड़ी कठिनाई मालूम हुई। मेरे कपड़े का पता नहीं—वह कब सड़-गल गया? आदमियोंमें जाना है—बदन ढाँकने के लिए वस्त्र तो नितान्त आवश्यक है। यह विचारकर मैंने झट एक वृक्ष से बड़े-बड़े पत्ते तोड़, जंगली बेलसे कमर में बाँध लिये। नीचे आनेपर नदीके किनारे-किनारे चलना ही मुझे उचित मालूम हुआ, क्योंकि मुझे सन्देह होने लगा कि वह नजदीक वाला मार्ग साफ है या नहीं। गंगा किनारे आते ही मेरी इच्छा पहले स्नान करने की हुई। सूर्य की धूप यद्यपि सामने पड़ रही थी, दिन भी दो-तीन घंटे चढ़ आया था, लेकिन अभी थोड़ी-थोड़ी पहाड़ी सरदी पड़ रही थी। तो भी मैंने खूब स्नान किया। नहा-धो चुकने पर सामने कुछ परिचित फल लगे दिखाई पड़े। मैंने उन्हें तोड़कर खूब मतलब भर खाया। इस तरह पेट पूजासे निश्चिन्त हो, कदम आगे बढ़ाया।

जब मैं पहले यहाँ आया था, तभी ६०-६१ वर्षका हो चुका था, बाल बहुतसे पक गये थे; लेकिन अब तो ये सर्वथा सन-जैसे श्वेत हो गये थे। चिरकाल तक निराहार रहने से शरीर सूख गया था, किन्तु उत्साह और फुर्ती अब भी कम नहीं थी। चलते-चलते चार-पाँच घंटे हो गये। प्रायः छः-सात कोस चल पाया होगा कि ऊपर से तार जाते दिखाई पड़े। धूपमें चमकनेसे मालूम पड़ा कि तार ताँबे के हैं। ताँबेके तार तब यहाँ दिखाई न पड़े थे, इसलिये यह नया परिवर्तन मालूम हुआ। मैंने अनुमान किया, शायद इधर कहीं बिजली पैदा की जाती है, जो इन तारोंके द्वारा और जगहों पर जाती होगी। अब आगे आस-पास पर्वतों पर दोनों तरफ अनार, नारंगी और केलेके बाग दिखाई पड़ने लगे। कोसों तक चल आया, पर अभी कोई आदमी दिखाई न पड़ा। मुझे बगीचोंमें होकर रास्ता जाता मालूम पड़ा; विचार आया उससे चलनेपर क्या जाने जल्दी कोई आदमी मिल जाय। मैंने अब नदी-तट छोड़ ऊपर का रास्ता पकड़ा और नारंगी के वृक्षोंकी छायामें चलना आरम्भ किया। देखा, फल खूब

लगे हैं और वह भी साधारण नहीं, बहुत बड़े-बड़े। फिर सौन्दर्यका क्या कहना है ? मन में सोचा, अगर आगे कोई रखवाला मिले तो पूछूं। मैं जितना ही आगे बढ़ता जाता था, मेरी उत्सुकता और बढ़ती जाती थी।

अब नारंगी के बगीचे समाप्त हो चले, सेबों के शुरू हुए। यह बात नेपालके लिए मुझे नई मालूम पड़ी। सेब बहुत बड़े-बड़े लदे हुए थे, और बाग भी पर्वतकी ऊँचाईके साथ-साथ ऊपर चोटी तक चले गये थे। जगह-जगह बरसाती पानीके नीचे गिरनेके लिए नालियाँ और नल लगे हुए थे। मोटे-मोटे नलों से पानी सब जगह पहुँचाया गया था। कहीं-कहीं पीनेके भी नल दिखाई पड़ते थे। रास्ते से कुछ हटकर एकाध छोटे-छोटे टीनके मकान खड़े मालूम देते थे। पर मैंने रास्ता छोड़कर वहाँ जाना न चाहा। सोचा, अभी आगे चले चलें, कहीं-न-कहीं रास्तेपर ही कोई मिल जायगा।

पूरे चार कोस चलने के बाद आखिर आदमियोंकी आवाज सुनाई दी। ज्यों-ज्यों नजदीक आता जाता था, आवाज स्पष्ट होती जाती थी। जब पास आया, तो देखा, उनमें स्त्री और पुरुष दोनों ही हैं। उनके वस्त्र बहुत ही स्वच्छ हैं; चेहरे खिले हुए हैं। मनमें विचारा, क्या ये नेपाल राज-परिवारके स्त्री-पुरुष तो नहीं हैं, जो शायद मनोरंजनके लिए यहाँ आये हैं, लेकिन ऐसी बात नहीं मालूम पड़ती। ये तो डलियों में तोड़-तोड़कर फलोंको जमीनपर रखते जाते हैं और कुछ लोग उन्हीं फलों को सामने लिये जा रहे हैं। मालूम होता है, वहाँ वे ढेर लगाते होंगे। इसके अलावे राज-खानदानका बीस-गजी पायजामा भी इन स्त्रियोंके पास नहीं है; यद्यपि इनका रंग-रूप, वेष-भूषा, शारीरिक गठन, स्वच्छता, व्यवहार उनसे कहीं ऊँचे दर्जेका है, किन्तु फर्क भी अवश्य है। ये सब-की-सब पैंट पहने हैं; इनके हाथ-पैर मोजे और दस्तानेसे ढँके हैं। पैरोंमें जूते भी हैं। इसमें अवश्य कोई रहस्य है। अच्छा, इनसे मिलकर ही पता लगेगा। और अब तो बिलकुल पास ही आ गया हूँ। काममें लगे रहनेके कारण उन्होंने मुझे नहीं देखा। लेकिन वह देखो, वहाँ एकने मुझे

देखकर अपने साथियोंसे कुछ कहा। सब-के-सब क्या मेरी तरफ आँखें फाड़-फाड़कर देख रहे हैं ? क्या मैं कोई जन्तु हूँ ? कोई मेरे पत्तोंके कपड़ोंकी ओर देख रहा है, तो कोई दाढ़ी की ओर। अच्छा, वह एक आदमी इधर आ रहा है, उसीसे सब बातें मालूम होंगी।

हालांकि आनेवाला व्यक्ति सीधे ही आ रहा था, पर मेरी उत्सुकता मुझे अधीर बना रही थी।

सेवग्रामका बाग

उस पुरुषने धीरे-धीरे मेरे पास आ, 'स्वागत' कहा। यद्यपि उसने मुझसे एक ही बार यह शब्द कहा, लेकिन मेरे कानोंमें न जाने कितनी बार उसकी आवृत्ति होती रही। इसके बाद ही वार्तालाप शुरू हुआ।

"आप कहाँसे आ रहे हैं ?"

"कहीं दूरसे तो नहीं; करीब दो घंटे दिन चढ़ा था, तब मैं अपने स्थानसे चला हूँ।"

"अब," झट घड़ी देखकर—"तीन बजकर बीस मिनट हो चले हैं। मुझे क्षमा करेंगे, अगर मेरी बातोंमें कुछ ढिठाई हो, क्योंकि आपके दर्शनने ही जिज्ञासा-तरंगोंसे हृदयको डाँवाडोल कर दिया है।"

"जो कहना हो निस्संकोच होकर कहो। मेरे कुतूहल भी कुछ कम नहीं हैं। यद्यपि इस स्थानसे मेरा निवास बहुत दूर नहीं, लेकिन समयसे कुछ अवश्य दूर है। अच्छा, यह तो बताओ, आज सन्-संवत् क्या है ?"

"सन् १००"

"कौनसा सन् ?"

"सार्वभौम। आप कौन सन् पूछते हैं ?"

"ईसवी।"

"वह है, २१२४।"

"ओ-हो ! तो क्या मुझे गुफामें बैठे दो सौ वर्ष हो गये ? तभी तो सब जगह परिवर्तन-ही-परिवर्तन दिखाई पड़ता है। अच्छा, पूछो जो कुछ पूछना हो।"

"क्या आपको गुफामें बैठे दो सौ वर्ष हो गये ? और बैठते समय अवस्था क्या रही होगी ?"

"६० वर्ष।"

"२६० वर्ष बहुत होते हैं। मेरी अवस्था अभी ६० वर्षकी है। बृद्धपुर में १०० और १२० वर्षके भीतरके कई पुरुष हैं, किन्तु आपकी अवस्थाका पुरुष अभीतक सुननेमें नहीं आया। यह सब बातें मुझे और भी आश्चर्यमें डाल रही हैं; साथ ही बहुत-कुछ पूछनेकी उत्सुकता भी उमड़ रही है, किन्तु यहाँ जो मेरे साथी स्त्री-पुरुष हैं, वे भी मुझसे कम उत्सुक नहीं हैं। इसलिए क्या ही अच्छा हो, अगर उनके सामने ही आप अपनी आत्म-कथा कहें। × × × हाँ, एक बात और। अब ऐसे वस्त्रोंका रिवाज नहीं रहा; अनुचित तो न होगा, यदि आपको पहननेके लिए वस्त्र ला दूं ?"

"नहीं, कुछ अनुचित नहीं। इसकी आवश्यकता मैंने भी महसूस की थी।"

उस भद्रपुरुषने मेरा वाक्य खतम होते ही 'अर्जुन ! अर्जुन !' पुकारा; और आवाज सुनते ही एक युवक दौड़ा आया। उसने स्मितमुख हो मेरा स्वागतकर अपने साथीसे पूछा—"क्या है ?"

"यहाँ, इस मकानमें धोती-जोड़े रखे होंगे। दौड़कर उनमेंसे एक यहाँ लाइये···आपके पहनने के लिए।"

"बहुत अच्छा," कहकर अर्जुन दौड़ गया और दो मिनटमें निहायत साफ एक धोती ले आया।

मैंने धोती लेकर कहा—"पहली बात तो यह कि चूँकि हमें बातें बहुत करनी हैं, अतः नामसे परिचित होना चाहिए। मेरा नाम विश्वबंधु है और आप अपना नाम बतलाइये।"

"मेरा नाम सुमेध ।"

"तो सुमेध जी ! सहायताके लिए धन्यवाद ।"

"नहीं, वैसी कोई बात नहीं । अब हम लोगोंके जलपानका भी समय होगया है । आप भी थके-मांदे होंगे—भूख लग जाना भी स्वाभाविक ही है । अभी जलपान करें और इसके बाद आत्म-वृत्तान्तसे हमें कृतार्थ करें ।"

"सुमेध ! सचमुच तुम्हारे थोड़ेसे वार्तालापने मुझे बहुत आकृष्ट कर लिया है । इस समय मेरे आनन्दका ठिकाना नहीं । अच्छा चलो ।"

अब सुमेध मुझे साथ लेकर उस मकानकी ओर चले । इतने में एकाएक तोपके गोले-की-सी आवाज हुई । पहले तो मैं चौंक गया, पीछे पूछनेपर मालूम हुआ, यह जलपान की सूचना है । मेरी अनेक जिज्ञासाओं में एककी और वृद्धि हुई । मैंने देखा, उधरसे वे स्त्री-पुरुष भी—जो काममें लगे थे—काम छोड़कर इसी मकानकी ओर चले आ रहे हैं । मकानके पास जाकर क्या देखता हूँ, साफ पानीके कितने ही नल लगे हुए हैं । नहानेके लिए साफ जलके टब हैं । मकान बहुत स्वच्छ है । तीन-चार बड़े-बड़े कमरे हैं । एक हॉल है, जिसमें डेढ़-दो-सौ आदमी बैठ सकते हैं । कमरों में बहुत-सी कुर्सियां हैं ।

मैंने बड़े हॉलमें देखा, पांतीसे कुर्सियां और मेज लगे हुए हैं । मेजों पर एक-एक तश्तरीमें सेब, केले, अंगूर आदि कितने ही फल रखे हुए हैं और गिलासोंमें भरकर दूध । हम सब स्त्री-पुरुषोंकी संख्या करीब एक-सौ थी । मैंने उतनी ही थालियां यहां देखकर पहले आश्चर्य किया । क्या स्त्रियां भी पुरुषोंकी बगल में बैठकर नाश्ता करेंगी ? इतने हीमें वे सब स्त्री-पुरुष भी आ गये । सबने स्मितमुख हो स्वागत किया । महाशय सुमेधने उन्हें सम्बोधित करके कहा—

"साथियो, हमारे आजके अतिथिको देखकर सबको बड़ी जिज्ञासा है । फिर हमारे जैसोंकी—जिनने एकाध बात सुन ली है—उत्सुकताका तो कोई हिसाब नहीं । इसीलिए मैंने अकेले ही सब सुन लेना अच्छा नहीं

समझा। अभी तो सिर्फ इतना जान पाया हूँ, कि हमारे विश्वबंधु जी १९२४ से ही, यहाँसे १०-१२ कोसकी दूरीपर जमे हुए थे, जहाँसे आज ही आ रहे हैं।"

इतना सुननेपर नर-नारियोंका कौतूहल और भी उत्तेजित हुआ, पर जलपान करनेका समय बीत रहा था। इसलिए सबने हाथ-मुँह धोकर अपना-अपना आसन ग्रहण किया। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि अर्जुनने मेरे जलपानकी थाली परोसनेको धोती ले जाते समय ही कह दिया था। सुमेधने मुझे एक कुर्सीपर बैठाया और पास ही स्वयं भी बैठ गये। उनके समीप ही एक महिला बैठी थी, जो आगे चलकर मालूम हुआ कि, उनकी साथिन सुमित्रा थी। परोसनेवालोंने अपना काम समाप्तकर स्वयं भी एक-एक आसन ग्रहण किया। अब सबका नाश्ता शुरू हुआ। मैंने भी एक कतरा सेव मुखमें डाला। मुझे उसकी मधुरता और सरसता अद्‌भुत मालूम हुई। मैंने तो उस समय यही समझा कि शायद चिरकालके बाद खानेसे यह इतना स्वादिष्ट मालूम हो रहा है, किन्तु पीछे मालूम हुआ कि, यह वैज्ञानिक रीतिसे फलोंकी खेती होनेका परिणाम है। मुझे अधिक भूखा समझकर कुछ ज्यादा फल दिया गया था। उसमें नारंगीकी भी कुछ फाँकें थीं। नेपालकी नारंगी पहले भी खाई थी, लेकिन इतनी मधुर और सुस्वादु नहीं। बीजका तो पता ही नहीं था, रेशे भी नदारद। अंगूरोंके दाने बनारसी बेरोंके बराबर थे। मैंने पूछा—"ये अंगूर कहाँ के है?"

सुमेधने बतलाया—"यहाँ से चार कोसके फासले पर इसका बाग है।"

"क्या नेपालमें भी अंगूर होता है।"

"बहुत। इसको तो सैकड़ों वर्ष हो गये। सारे बिहार, उड़ीसा, आधे बंगाल, काशी और कोसल को यहींसे अंगूर जाता है!"

अब जलपान समाप्त हो गया। सबने हाथ-मुँह धो, एक कमरेकी ओर मुंह किया। वहाँ बहुत-सी कुर्सियाँ पड़ी थीं। सुमेधने मुझे ले-जाकर

एक आरामकुर्सीपर बैठाया। मैं तो मन-ही-मन कह रहा था कि ये लोग जरूर मुझे बीसवीं सदीका जंगली समझते होंगे और उसमें भी इन्होंने मुझे पत्ते पहने भी देख लिया है। दूसरे, इनमेंसे किसीको दाढ़ीका भी शौक नहीं है और मेरे रीछके-से बाल!

मैंने इन लोगोंको बागमें काम करते देखा था, इसलिए समझ बैठा था कि ये जरूर मजूर हैं, लेकिन अब उत्सुकता हुई कि पूछूं, इन बागों का मालिक कौन है? पर हिम्मत नहीं हुई।

वर्तमान जगत्

"आपकी बातें सुननेके लिए हम सभी बड़े उत्सुक हैं।"

"आपसे ज्यादा आपकी बातें जाननेके लिए मैं उत्सुक हूँ। सुमेधजी, मेरी कहानी बहुत बड़ी नहीं है। उक्त गुफामें आनेसे पूर्व मैं बिहार प्रान्तके नालन्दामें रहता था। उस समय वहाँ एक विद्यालय था, जिसमें मैं पहले पढ़ता-पढ़ाता था।'

"ओ-हो! आप नालन्दा-विद्यालयके अध्यापक विश्वबन्धु हैं? सच-मुच हम कितने भाग्यशाली हैं कि आपके दर्शन कर सके! मैं भी तीन वर्षसे बीसकी अवस्था तक आपके ही विद्यालयकी गोद में पला हूँ। वहाँ के 'वसुबन्धु-भवन' में मैंने आपकी प्रस्तर-मूर्त्ति भी देखी है।"

"तो हमारा प्यारा विद्यालय अब भी जीवित है?"

"जीवित ही नहीं, बल्कि आज उस विद्यालयके मुकाबलेमें संसारमें शायद ही कोई दूसरा विद्यालय हो। दर्शन, ज्योतिष, भाषा-विज्ञान, इतिहास और राजनीतिके लिए नालन्दा अद्वितीय है।"

मैं जिस समय नालन्दा-विद्यालयके उत्कर्षको सुन रहा था, मेरे आनन्दकी सीमा न थी, हृदयमें आनदका सिन्धु तरंगें मार रहा था। श्रोतागण भी इस परिचयसे बहुत प्रभावित दीख पड़े। सब-के-सब मेरी

ओर एक ऐसी दृष्टि से देख रहे थे, जिसमें प्रेम और सम्मानका भाव था। अब मेरी ज्ञातव्य बातें उन्हें मालूम ही हो चुकी थीं। मैंने उनकी बात जानने के लिए अपनी राम-कहानीका यों शीघ्र अन्त कर दिया—

"कोई तीस वर्ष तक विद्यालयकी सेवा करनेके बाद मैं उत्तराखंड घूमने आया। उस गुफामें, जो यहाँ से १२-१३ कोसपर है, पहुँचकर मुझे मूर्छा या नींद आ गई, और अब तक वहीं पड़ा रहा। बस, यही मेरी संक्षिप्त कथा है। अब आप लोग बतलायें, आपकी जन्मभूमि कौन-सी है, आपकी भाषा तो नेपाली नहीं मालूम होती ?"

"अब उस नेपाली भाषाको तो आप कहीं बोली जाती न पायेंगे। हाँ, पुस्तकालयोंमें उसकी पुस्तकें अवश्य पाई जायँगी। अब सारे भारत-वर्षमें एक ही भाषा बोली जाती है। हम सबका जन्म एक ही जगह नहीं हुआ है। यद्यपि मेरे पिताका जन्म काठमांडोका था, लेकिन नालन्दा-विद्यालय में शिक्षा समाप्त करनेपर उन्होंने गया जिलेके शाक-ग्रामको अपना कार्यक्षेत्र बनाया। मेरा जन्म वहीं का है। अभी मेरे पिता जीवित हैं और आजकल माता के साथ हजारीबागके वृद्धग्राम में रहते हैं। उनकी अवस्था सौ वर्षसे ऊपरकी है। इसी तरह यहाँके हमारे सभी साथियों के बारेमें समझिये। मेरी साथिन सुमित्राका (पासमें बैठी महिलाकी ओर संकेत करके) जन्म काशीका है, किंतु इनकी शिक्षा भी नालन्दा-विद्यालयमें हुई है। विवाहके बाद हम दोनोंने यहीं काम करना निश्चित किया। साथी अर्जुनका जन्म लंकाके अनुराधपुरका है, किंतु जब यह एक ही वर्षके थे, तो इनके माता-पिता बोधगयामें आ बसे और इन्होंने भी नालन्दामें ही शिक्षा पाई। इनकी साथिन प्रतिभा काश्मीर की हैं, लेकिन शिक्षा इनकी उसी विद्यालय में हुई है। इसी तरह यहाँ जितने साथी उपस्थित हैं, इनकी संख्या १०० है और इनके जन्म-स्थान भी एक सौसे कुछ ही कम होंगे। हमारे सेवग्राममें पाँच हजार की आबादी है, जिसमें आधे स्त्री-पुरुष दूसरी जगहके हैं। बात यह है कि तीन सालकी उम्रमें ही लड़के शिक्षाके

लिए विद्यालय में चले आते हैं और बीस वर्षकी अवस्थामें शिक्षा समाप्त होने पर उनमेंसे बहुत कम अपने जन्मके गाँवको लौटते हैं। जिनकी जिस विद्या और शिल्पकी ओर रुचि हुई, वे उसी तरहकी बस्ती में जा बसते हैं ?

"तो जान पड़ता है, अब सभी बातोंमें पुराने जमानेसे अन्तर हो गया है। अच्छा, यह तो बताओ, इस समय नेपालका राजा कौन है ?"

"नेपालका राजा ! 'राजा' शब्द तो अब पुस्तकोंकी ही शोभा बढ़ाता है। अब राजा कहाँ ?"

"अच्छा, ये बाग किसके हैं ?"

"अब तो सभी चीजें राष्ट्रीय हैं, सिर्फ बाग क्या ? यह घर, कुर्सी, पलँग, लड़के, स्त्री-पुरुष सब राष्ट्र के हैं।"

"तो राष्ट्रका संचालन कैसे होता है ?"

"हमीं लोगों द्वारा चुने गये पंचोंकी पंचायतोंसे। ग्राम, जिला, प्रांत, देश, अखिल भूमंडल सबका संचालन इसी तरह होता है।"

"क्या भूमंडलका एक ही राष्ट्र है ?"

"हाँ, आज सौ वर्षसे। अच्छा, तो अब हमें आज्ञा दीजिये, हम लोग भी अपना बचा काम समाप्त कर आवें। (घड़ी देखकर) चार बज गये, पाँच बजे हम लोग यहाँ से चलेंगे। मैं अभी ग्रामणीको आपके मिलने की सूचना देता हूँ। शामको वहीं विश्राम करना होगा।"

"हाँ, आप लोग अपना काम करें। मैं मजेमें यहाँ बैठा हूँ।"

सुमेधके उठते ही सभी लोगोंने बागका रास्ता लिया। सुमेध ने टेली-फोन की घंटी बजाई। जिसका उत्तर भी तुरन्त मिला। उन्होंने चुपकेसे न जाने क्या कहा। फिर कुछ सुनकर मुझसे बोले—"हमारे ग्रामणी देवमित्र आपसे कुछ बात करना चाहते हैं। मैं तो अब काम पर जा रहा हूँ।" यह कह वह भी कामपर चले गये। मैं 'रेडियो-फोन' के पास गया। वहाँ देखता हूँ, एक शीशेपर एक मनुष्यका प्रतिबिम्ब है। मैं चकित होकर

देखने लगा। वह मेरा प्रतिबिंब तो है नहीं; साथ ही वहाँ कोई दूसरा आदमी नहीं; फिर यह कोई चित्र भी तो नहीं है। मैं स्तब्ध और चकित हो रहा था, इतने हीमें उस प्रतिबिम्ब का होठ हिला और टेली-फोन से आवाज आई—"स्वागतम्! मैं देवमित्र हूँ। अभी साथी सुमेधने आपके शुभागमन की सूचना दी थी। सबसे बड़ा काम तो यह है कि अभी आपके चित्र और समाचार को पटना भेज रहा हूँ। वहाँ से छः बजे के भीतर-ही-भीतर सारे भूमंडलमें आपका चित्र और समाचार पहुँच जायगा। आपके यहाँ आने पर मैं तो स्वागत के लिए हाजिर रहूँगा ही, इस समय आपको अधिक कष्ट नहीं देना चाहता। आप थके-माँदे होंगे—विश्राम करें।"

मैंने देवमित्रकी बातोंको यद्यपि आश्चर्य से सुना, किंतु मनको समाधान किया, यह सब विज्ञानके चमत्कार हैं। बहुत दिनोंके बाद चलनेसे सचमुच मेरे पैरोंमें थकावट मालूम होती थी, किन्तु निद्रा नहीं। अभी लेटने का विचार कर ही रहा था, कि खुले किवाड़से दूसरे कमरेमें देखा, एक आलमारीमें, और उसके पासके मेजपर कुछ किताबें हैं। मेरी उत्सुकताने मुझे पलँगकी ओर कदम बढ़ाने न देकर उधर आकृष्ट किया। जाकर देखता हूँ, आलमारी में बहुत ही सुन्दर जिल्दों से सज्जित किताबें रखी हुई हैं। पास की एक कुर्सीपर बैठकर मैंने मेजसे एक किताब उठा कर देखी। किताबमें मामूलीसे कुछ अधिक वजन मालूम हुआ। खोलकर देखा तो चाँदीके रंगके-से किसी धातुके पन्ने हैं। छपाई-सफाई अतीव सुन्दर। मेरे दिलमें इच्छा हुई, देखूँ, कहाँ की छपी है। देखने पर ज्ञात हुआ, नालंदा प्रेस में २०२४ में छपी है। आज सौ वर्ष छपे होगये, लेकिन देखनेसे मालूम होती है, बिलकुल अभी प्रेससे आई है। खोलनेपर उसके पन्ने निहायत बारीक दीख पड़े। एक इन्चमें प्रायः तीन हजार पृष्ठ रहे होंगे। मुझे पग-पगपर वर्तमान जगत्‌की सभी घटनायें आश्चर्य-जनक मालूम होने लगीं। मैंने विचारा, पहले यह देखना चाहिये कि कौन-कौनसी पुस्तकें हैं। मेजपर एक ओर मोटे अक्षरोंमें सूचीपत्र

अंकित एक गुटका देखा। देखने से ज्ञात हुआ, इतिहास, वनस्पति-विज्ञान, साहित्य और भूगोल-सम्बन्धी यहाँ दो-सौ पुस्तकें हैं। भाषा के विचारसे अधिकतर पुस्तकें हिन्दी की थीं। कुछ पुस्तकें सार्वभौम भाषामें थीं और एक-दो अँग्रेजीकी भी। मैंने जिसे उस समयके लिये सबसे उपयुक्त समझा, वह था—सार्वभौम राष्ट्र-संगठन का इतिहास। उसे उठाकर मैं कुर्सीपर जा बैठा। पुस्तक की छपाई आदि अद्वितीय थी। छपी भी इसी वर्षकी थी। लेखक नालन्दा-विद्यालयके एक इतिहासज्ञ, अध्यापक विश्वामित्र थे। मैंने विचारा, दो-ढाई हजार पृष्ठोंवाली इस पुस्तकका एक घंटे में पढ़ना मुश्किल है, अत: विषय-सूचीही देख लूँ।

सूची देखनेसे १९२४ के बादकी मोटी-मोटी बातें जो मालूम हुई, वे यह हैं—ब्रिटिश छत्रछायामें भारतको स्वराज्य १९४० तक, संयुक्त एशिया राष्ट्र १९९० तक, संयुक्त एशिया-अफ्रीका-आस्ट्रेलिया राष्ट्र २००० तक, संयुक्त यूरोप-अमेरिका राष्ट्र २०१० तक, भूमंडलका एक राष्ट्र २०२४ तक। मैंने कहा, देखूं, आजकल अखिल भूमंडलका राष्ट्रपति कौन है। मैंने इसके लिये पुस्तकका अन्तिम अध्याय देखा, जिसमें नामोंके साथ उन व्यक्तियोंके चित्र, जन्मस्थान और शिक्षास्थान भी दिये गये थे। सम्पूर्ण भूमंडलके राष्ट्रपति अगले तीन वर्षोंके लिये श्री दत्त चुने गये हैं, जिनका जन्मस्थान भारत ही है। शिक्षा उन्होंने तक्षशिलामें पाई। अवस्था चौहत्तर वर्षकी है। प्रधान मंत्री ओहारा जापानी हैं। शिक्षा-मंत्रिणी मोनोलिन एक रूसी महिला, स्वास्थ्य-मंत्री डेविड अमेरिकावासी, इसी प्रकार और-और विभागों के भी मंत्री भिन्न देशोंके लोग हैं। मैंने खूब गौर करके देखा, तो भी वहाँ सेना-मंत्री कोई नहीं दिखाई पड़ा। विचारमें आया कदाचित् छापेकी भूलसे नाम छूट गया हो। भला ऐसा महत्त्वपूर्ण पद रिक्त कैसे रह सकता है? पीछे मैंने देश-देशकी राष्ट्र-सभाओंमें देखा, सभी जगह सेना-मंत्रीका अभाव था। मैंने अन्तकी शब्द-सूची उलटकर देखी, जहाँ सेना, सेनापति, सेना-मंत्री शब्द आये थे। उन पृष्ठों के पढ़नेसे ज्ञात हुआ, २०२४ ई० हीमें प्राचीन

संसारका यह महत्त्वपूर्ण पद उठा दिया गया। अब न तो सेना कहीं है, न सेनापति ही।

मैं अभी इतना ही देख पाया था कि इतनेमें सभी लोग कामपरसे चले आये। आते ही सुमेधने मुझे चलनेके लिए कहा। मैं उठ खड़ा हुआ। मकानसे बाहर जानेपर, केवल किवाड़ लगाकर जब सबको ही चलते देखा, तो मैंने पूछा—

"क्या यहाँ कोई नहीं रहेगा?"

"काम क्या है?"

"चीजोंकी रखवालीके लिए; और नहीं तो मकानमें ताला ही लगा चलते?"

"अनजान आदमी द्वारा भूल-चूकसे पुर्जा छू जानेके डरसे तालेको बिजलीके कारखानोंमें लगाते हैं। यहाँ-किताबोंके छूनेसे कौन मर जायगा? कोई जीव-जन्तु भीतर जाकर कोई चीज खराब न कर दे, इसके लिए दर्वाजे तो लगा ही दिय हैं।"

जानवरका नाम आतेही स्मरण आ गया, कि यहाँ तो पहले बहुत बन्दर थे; पूछा—

"अच्छा, यह तो मालूम हुआ कि अब चोरीकी सम्भावना नहीं है परन्तु, यह तो बताओ, पहले यहाँ बहुतसे बन्दर रहते देखे थे, अब वे क्या हुए—एक भी नहीं दीख पड़ते?"

"आप यह सौ वर्षसे पूर्वकी बात पूछ रहे हैं। मैंने पुस्तकोंमें पढ़ा है, पहले जिन-जिन स्थानोंपर बन्दर बहुत थे, फसलका नुकसान देखकर सरकारने बड़े यत्नसे पकड़-पकड़कर उनमेंसे बन्दरियोंको तो हजारों पिंजड़ों वाले घरोंमें रख छोड़ा और बन्दरोंको एक टापूमें छोड़ दिया। इस प्रकार २०-२५ वर्षके अन्दर सारे बन्दर स्वयमेवनष्ट हो गये, क्योंकि उनकी सन्तान-वृद्धि रुक गई।"

"तो क्या अब बन्दर हैं ही नहीं?"

"कुछ हैं, जो प्राणि-विद्याके उपयोगके लिए बड़े-बड़े संग्रहालयोंमें

रक्खे गये हैं, जहाँ उनकी संतति आवश्यकताके अनुसार बढ़ाई जाती है। बन्दर ही नहीं, और भी ऐसे अनेक जीव हैं, जो अब केवल संग्रहालयोंकी ही शोभा बढ़ा रहे हैं, जिनको कि पहले लोग बड़े चावसे पालते थे।'

मैंने स्मरण करके पूछा—कुत्ते-बिल्ली तो ग्रामोंमें हैं न ?"

"नहीं, उनसे ग्रामको लाभ क्या ? उनकी जाति भी अब आप संग्रहालयों ही में पाइयेगा।"

मोटरें सड़कपर लगी दिखलाई पड़ीं; हमने भी बात करते-करते अपना-अपना स्थान ग्रहण किया। एक-एक मोटरमें बीस-बीस आदमियोंके बैठनेका खुला स्थान था। मैंने पूछा—"तोड़े हुए फल कहाँ गये ?"

"वे तो उसी समय तोड़े जाते और मोटरोंपर लादे जाते थे। आपके आनेके समय ज्ञात होता है मोटरें बोझ लेकर चली गई थीं। यहाँ देर तक रखकर सुखानेसे तो फलों की हानि होती, इसलिए स्टेशनपर जाते ही उन्हें बर्फ लगी हुई गाड़ीमें रखकर माँगवाले स्थानोंपर भेज भी दिया गया होगा ?"

"तो आपके गाँवमें केवल फल ही पैदा होते हैं ?"

"हाँ केवल फल; इसमें भी सेबके बगीचे ही ज्यादा हैं। यही कारण है कि हमारे ग्रामका नाम ही सेबग्राम पड़ गया है। हमारे यहाँ से १५ मीलपर नारंगी-ग्राम है, जहाँ नारंगीके ही बगीचे हैं। आपने पीछे बागमती के उस पार केलोंका वन देखा होगा।"

"हाँ, देखा था।"

वह कदली-ग्रामकी हदमें है। वहाँ प्रायः केले-ही-केले उत्पन्न होते हैं, हमारे ग्राममें थोड़ा-नारंगीका भी बगीचा है। आपने जलपानमें जो केला खाया था, वहींका था।"

"मैंने सभी फलोंमें एक विशेष प्रकारका स्वाद और मिठास पाया। आकृति भी उनकी बड़ी देखी, क्या इसमें भी कोई बात है ?"

"हाँ, अब वनस्पति-विज्ञान आपके समयसे बहुत उन्नत हो गया है। फलोंमें विचित्र रूप, रस, गन्ध, आकृति पैदा करना मनुष्यके हाथमें है।"

हमारा वार्तालाप जारी था। मोटरें सर्राटेके साथ आगे भागती जा रही थीं। दोनों ओर सड़कके किनारे सेबोंके बगीचे थे। हमारी सड़क यद्यपि कहीं-कहीं दस-बीस हाथ ऊंचे-नीचे चली जाती थी, किन्तु वह चढ़ाई-उतराई ऐसी थोड़ी-थोड़ी थी कि मालूम नहीं पड़ती थी। दाहिनी ओर बागमती थी और बाँई ओर पर्वत। बागमती कहीं-कहीं ४०० गज नीचे है, कहीं इससे कम, किन्तु बगीचा तट तक चला गया है। भूमि एकरस करदी गयी है। चट्टानें, जो भूमिको ऊबड़-खाबड़ बनाती रहीं, यातो ढाँकदी गई हैं या तोड़कर गंगामें फेंकदी गई हैं। मुझे मनुष्यकी इस शक्तिको देख आश्चर्य और आनन्द दोनों होता था।

विचार करते-करते मेरे दिलमें आया, सेब-नारंगीकी फसल सदा तो नही होती। दूसरे दिनोंमें ये लोग क्या काम करते होंगे? उत्तर पानेसे पहले हीं आसपास के बागोंमें छोटे-छोटे फल लगे दिखाई पड़े। मैंने पूछा—"यह क्या दूसरी जाति के सेब हैं, जो इतने छोटे हैं?"

"जातिमें भेद तो अवश्य है, किन्तु कदमें नहीं। ये तो बढ़कर उनसे भी बड़े और लाल होते हैं, इनकी फसल अभी दो मासमें तैयार होगी। हमारे यहाँ फसल बराबर ही लगती और टूटती रहती है।"

अभी यह बात हो ही रही थी कि मोटर रेलको सड़क पारकर गई। मैंने पूछा—"यह रेल कहाँ जाती है?"

"यह चन्द्रागढ़ी होती हुई काठमांडो और वहाँसे और आगे बहुत दूर तक फैली हुई है।"

मैंने आश्चर्यसे पूछा—"क्या रेल इन पहाड़ोंपर चली गई। मैंने तो उस समय चन्द्रागढ़ीपर बोझ ढोनेके लिए 'रोप-लाइन' का प्रबन्ध होते देखा था। उस समय उसके लिए फर्पिङ्गके बिजली-घरसे बिजलीके खम्भे गड़ गये थे।"

"अब तो फर्पिङ्गमें वैसा कोई बिजलीका कारखाना नहीं है। मैंने भी पढ़ा है, पहले नेपाल में चन्द्र शमशेर नामका एक राजा था। उसने अपने देशको लाभ पहुँचानेके लिए ही वहाँ एक बिजलीका कारखाना

बनवाया था, किन्तु आज डेढ़ सौ वर्षोंसे भी ऊपर हुए, वह बन्द कर दिया गया।"

"क्या मालूम है, क्यों बन्द कर दिया गया?"

"वहाँ आसपासके पहाड़ी झरनोंके पानीको एक तालाबमें जमा कर उससे बिजली तैयार की जाती थी, यद्यपि इससे कुछ बिजली तैयार होती थी, जो शायद उस समयके खर्च के लिए पर्याप्त भी समझी जाती हो, किन्तु झरनोंके पानीका इस प्रकार विनियोग करनेसे फपिङ्के आस-पासके पर्वत सूखते चले गये। चन्द्रने अच्छे ही विचारसे इन दोनों कामों को क्यों न किया हो—"

"दूसरा काम कौन-सा?"

"दूसरा काम पहाड़ों और आसपासके जंगलोंको काटकर खेत बनवा डालना।"

"उससे हानि क्या थी?"

"उससे भी पहाड़ धीरे-धीरे सूख चले—वृष्टि कम होने लगी। आखिर पचास वर्षके भीतर-ही-भीतर पानीके अभावसे उन खेतोंको छोड़ कर लोगों को भाग जाना पड़ा।"

"तो क्या उस कारखाने को बन्द करनेसे कुछ फायदा पहुँचा?"

"हाँ बहुत। अगर आप जाकर देखें, तो फपिङ्के आसपासके पर्वत रम्य उद्यानोंसे हरे-भरे मिलेंगे। चारों तरफ सेब, नासपाती, अंगूर, अनारके बाग लहलहाते पायेंगे। ये सब फल वहाँ होते भी हैं बहुत बड़े और मीठे। इस तरह बगीचोंका जंगल लग जानेसे पहलेसे अब कई गुना ज्यादा लाभ है। पहाड़ फिर तर हो गये हैं; झरने भी बहुत हैं।"

"तब तो सभी जगह भारी क्रान्ति हो गई। अच्छा, अब शायद आपका गाँव भी करीब है। वही मकान तो दिखाई दे रहे हैं?"

"हाँ, वही; किन्तु अभी तीन मील है—यहीं बस मिनटका रास्ता।"

"क्या आपने नेपाल की सैर की है?"

"हाँ, बहुत। मेरा वार्षिक विश्राम बहुधा वहाँ और तिब्बतकी सैर हीमें कटा है। मुझे तीस वर्ष यहाँ रहते हो गये। प्रति वर्ष दो मासका विश्राम मिलता है। मैंने १०-१२ छुट्टियाँ वहाँकी ही यात्रामें बिताई हैं। भौगोलिक और आर्थिक दृष्टिसे भी मैंने वहाँके विषय में बहुत अध्ययन किया है।"

इस पुरुषकी इस प्रकारकी बातें सुनकर मुझे और भी आश्चर्य होता था। बीसवीं शताब्दीमें ऐसा पुरुष किसी अच्छे कालेजका प्रोफेसर होता। किन्तु आज यह सामान्य जनोंमें है। क्या विद्याकी कदर कम हो गई या विद्वत्ताका मान ऊँचा हो गया ? मैंने पूछा—"आपके इस ज्ञानसे औरों को भी लाभ पहुँचता है !"

"क्यों नहीं ? हमें डियुटी तो तीन घण्टे ही बजानी होती है। बाकी समयमें करते ही क्या हैं ? मैंने कई बार अपने परिसीमित विषयपर यहाँ व्याख्यान दिये हैं, छुट्टियोंके समय दूसरे जनपदों और देशोंमें भी व्याख्यान दे आया हूँ। मासिक-पत्रोंमें भी चर्चा करता हूँ।"

"अच्छा, यह तो हुआ; भला यह तो बताओ, नेपाल क्या-क्या चीजें पैदा करता है ?"

"खनिज पदार्थोंमें यहाँ ताबाँ, लोहा और सीसा। अपने यहाँ काम चलानेके लिए कोयला भी निकल आता था, किन्तु अब बिजली का उपयोग अधिक होने से कोयले की उतनी बड़ी आवश्यकता नहीं रही। विदेह, मल्ल और कोसल तक यहाँ से बिजली जाती है और बिजली तैयार होती है, कई नदियोंके जल-प्रपातसे। यह रेल भी उसी बिजलीसे चलाई जाती है। फिर उसीसे हमारी मोटरें चल रही हैं। इसके अतिरिक्त नेपाल मेवोंकी खान है। करोड़ों भेड़े और बहुत-से कम्बलके कारखाने भी यहाँ हैं। आधेसे अधिक भारतवर्षको गर्म कपड़े नेपाल ही देता है।"

"तो ज्ञात होता है, यहाँ चावल-गेहूँ नहीं होता।"

"नहीं; ये सब चीजें और प्रान्तोंसे आती हैं। आजकल जो वस्तु जहाँ अच्छी हो सकती है, वही वहाँ पैदाकी जाती है। प्राय: एक गाँव

एक ही चीज पैदा करता भी है। वहाँ जरूरतकी दूसरी-दूसरी चीजें और जगहोंसे पहुँचती हैं।"

हम गाँवके पहले घरके पास पहुँच रहे थे। मैंने देखा, वही पुरुष, जिसके प्रतिबिम्बको मैंने टेलीफोन में देखा था, मेरे स्वागतके लिए कुछ और आदमियोंके साथ खड़ा है। स्वागत हुआ।

मैंने देखा कि सभी स्त्री-पुरुष सुन्दर और स्वच्छ हैं। सड़कके किनारे सुन्दर मकानोंकी कतारें हैं। सभी मकान एक-से तथा बिना कोठेके हैं। मुझे यह एक बिल्कुल नई दुनियाँ मालूम होने लगी। अभी मैं इन बातों पर कुछ विचार ही कर रहा था, कि देवमित्रने मुझसे कहा—"इस रास्ते।"

मैं पीछे हो लिया। मेरे साथ वे सभी स्त्री-पुरुष भी शामिल थे। अब साढ़े पाँच बज चुके थे। जिस मकानकी ओर हम जा रहे थे, मैंने देखा, उस पर मोटे अक्षरोंमें लिखा हुआ है—'अतिथि-विश्राम'। ग्रामणी महाशयने पहुँचते ही वहाँपर उपस्थित एक पुरुषसे पूछा—"साथी देव! कौन-सा कमरा आजके मेहमानके विश्रामके लिए ठीक हुआ है?"

देवने कहा—"यही पाँचवां कमरा तो।"

अभी कमरे के द्वारपर ही हम पहुँचे थे कि बगल वाले कमरेसे एक दूसरे सज्जन निकल आये, जिनकी अवस्था सत्तर और अस्सीके बीचकी होगी। उन्होंने भी स्वागतम किया। अब हम लोग कमरेमें दाखिल हुए। ग्रामणी महाशयने कहा—

"इस समय हमलोग आपको अधिक कष्ट न देंगे। आप मार्गके थके-माँदे हैं। थोड़ी देर विश्राम करें। आठ बजे भोजन हो चुकने पर आपके दर्शनके लिए उत्सुक सभी ग्रामवासी सस्थागारमें एकत्रित होंगे। मुझे तो आप जानते ही हैं। मैं आजकल यहाँका ग्रामणी (ग्राम-सभाका सभापति) हूँ। ये दूसरे बीस साथी पुरुष और महिलायें ग्राम-सभाके सदस्य हैं। यह दूसरे अतिथि विश्वामित्र, नालन्दा-विद्यालयमें इतिहासके अध्यापक हैं। कुछ ऐतिहासिक खोजके सम्बन्धमें तिब्बत गये थे, जहाँसे

आज ही विमानसे यहाँ आये हैं। पीछे बात करने पर आपको इनसे और बातोंकी जानकारी होगी। यह साथी देव हैं।"

थोड़ी ही देर में और लोग मुझसे बिदा माँगकर चले गये। देवने झट बिजलीकी रोशनीकी, क्योंकि अब सूर्यास्त हो गया था। पहाड़ी सर्दी भीनी-भीनी लग रही थी। यद्यपि मार्गमें सुमेधने मुझे एक ऊनी लबादा दे दिया था, पर वह पर्याप्त नहीं था! देवने तापकको खोल दिया, और थोड़ी देर में कमरा गर्म हो गया। मैं एक कुर्सीपर बैठा और विश्वामित्रसे भी कहा कि यदि कोई अन्य आवश्यक कार्य न हो तो बैठ जाइये। वह दूसरी कुर्सीपर बैठ गये।

बाग में जो ऐतिहासिक ग्रन्थ देखा था, उसके रचयिताके नामसे यद्यपि मुझे निश्चित-सा हो गया था, कि यह वही विश्वामित्र हैं; तो भी मैंने पूछा—"क्या आप 'सार्वभौम राष्ट्रके संगठनका इतिहास' के लेखक अध्यापक विश्वामित्र हैं?"

उन्होंने नम्रतापूर्वक कहा—"हाँ, वही।"

"तो मुझे आपकी मुलाकातसे बहुत प्रसन्नता हुई।"

"उससे कहीं अधिक मुझे हमारा नालन्दा-परिवार आपको सदा याद रखता है। आपने जो बीज यहाँ बोया था, उसे देखकर आज आप प्रसन्न होंगे। आपके और ग्रामणी महाशयके वार्तालापके बाद ही आपके शुभा-गमन की मुझे खबर लग गई थी। वहाँ सारा विद्यालय-परिवार बड़ा उत्सुक है। हमारे आचार्य वशिष्ठने अभी मुझसे कहा है कि सबसे प्रथम आपके दर्शनोंका अधिकारी नालन्दा-परिवार है।"

"आपने क्या टेलीफोन-द्वारा यह वृत्तान्त जाना है?"

"हाँ। अभी तो पुस्तकालयमें टेलीफोन पर बात कर ही रहा था। आपके इस जगह आनेका समाचार भी उन्हें मैंने दे दिया है। उन्होंने कहा है, यदि कष्ट न हो, तो इसी समय वार्तालाप और दर्शन देनेके लिए कहें।"

"नहीं, कुछ नहीं। मुझे कुछ भी कष्ट नहीं है। कौन पैदल आया हूँ! चलो, चलें। यह मेरे लिए भी कम आनन्दका विषय नहीं है।"

यह कह हम दोनों उठकर पुस्तकालयमें गये। यहाँ सौ-डेढ़ सौ आदमियोंके बैठने लायक एक खुला हाल है। दो आलमारियाँ किताबों की हैं। बिजलीकी रोशनी जल रही है। बीचसे बड़े-बड़े मेज और बैठनेके लिए बहुत-सी कुर्सियाँ पड़ी हैं। विश्वामित्रने जाकर टेलीफोनमें घंटी दी। मैं वहाँ ही कुर्सीपर बैठ गया। वह कुछ क्षणके बाद मुझसे बोले-"हमारे, आचार्य आपकी प्रतीक्षामें खड़े हैं।"

मैंने जाकर देखा, शीशेमें एक वृद्ध पुरुषका प्रतिबिम्ब है। प्रतिबिम्बने होठ हिलाकर सिर झुकाया और टेलीफोनसे आवाज आई—'स्वागतम्'। मैंने भी सिर झुकाकर उत्तर दिया।

विश्वामित्रने कहा—"यही हमारे आचार्य हैं। आप सत्तर वर्ष से विद्यालयकी सेवा कर रहे हैं, जिसमें बीस वर्षसे आप आचार्यके पदपर वर्तमान है।"

मैंने कहा—"वशिष्ठजी, आपके मिलनेसे मुझे बहुत ही प्रसन्नता हुई। वास्तवमें आप सब धन्य है, जो इस प्रकार अनवरत विद्यादान द्वारा जगत्का उपकार कर रहे हैं।"

"यह हमारा कर्त्तव्य है।...हाँ, नालन्दा-परिवारकी ओरसे मेरी प्रार्थना है कि अन्यत्र कहींका निमन्त्रण स्वीकार करनेसे पूर्व पहले अपने विद्यालयमें पधारें।"

"यह मेरी स्वयं ही इच्छा है, इसके विषयमें और कुछ कहना न होगा। मैं यहाँसे सीधे वहाँ ही आऊँगा।"

"अध्यापक विश्वामित्र आपकी सेवामें हैं ही, यह भी खुशीकी बात है। वह अब विद्यालयको लौट रहे है; उन्हींके साथ पधारें। आपका शरीर अत्यन्त कृश है। इसलिए हमारा यह आग्रह नहीं कि आप तुरन्त आवें।"

"अवश्य यहाँसे वहाँ ही आ रहा हूँ। सभी बालक-बालिकाओं, और अध्यापक-अध्यापिका-परिवारसे मेरी मङ्गल कामना कहें।"

"यहाँ शब्द प्रसारकसे सभी सुन रहे हैं। अच्छा, तो अब आप विश्राम करें।"

इस वार्तालापने एक अद्भुत आनन्द मेरे हृदयमें पैदा कर दिया। मैं विश्वामित्रका हाथ पकड़े वहाँसे अपने कमरेमें आया। मैंने कहा—

"विश्वामित्र! मेरे समयके और अबके संसारमें बड़ा फर्क है। तुम तो इतिहासके अध्यापक ही हो—इन बातोंको जानते हो, किन्तु यह मुझे अधिक आश्चर्यमय इसलिए मालूम होता है, कि मैंने दो सौ वर्षोंके पूर्वका संसार इन्हीं आँखोंसे देखा था। मुझे वे बातें कलकी-सी दीख पड़ती हैं। उस समय समानताकी धीमी-सी आवाज उठी थी, किन्तु यह रूपरेखा स्वप्नमें भी कहाँ मालूम होती थी? मैं आज ही तुम्हारे संसारमें आया हूँ। अभी तो मैंने इसका शतांश भी देख-समझ न पाया। किन्तु, इतने हीमें आश्चर्य-समुद्रमें डूब रहा हूँ। मुझे यह देखकर प्रसन्नता हो रही है कि तुम्हारे संसारने आशातीत उन्नति की है।"

विद्यालयके विषयमें

"अच्छा, यह तो बताओ, नालन्दा विद्यालयकी इस समय क्या स्थिति है?"

"अब नालन्दा बहुत विशाल विद्यालय है। पुराने बड़गाँवसे राजगृह तक विद्यालयके ही भवन और छात्रालय चले गये हैं। सारे भूमंडलमें दर्शन और इतिहासके लिये ऐसा दूसरा विद्यालय नहीं। वहाँ अध्ययनके लिए यूरोप, अमेरिका, जापान, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया सभी जगहोंसे विद्यार्थी आते हैं। प्राचीन वस्तुओंका संसारमें सबसे बड़ा संग्रहालय यहींपर है। प्राचीन लिपियों और भाषाओंके पढ़ने-पढ़ानेका वहाँ सर्वोत्तम प्रबन्ध है। 'सार्वभौम सङ्घ'की आज्ञासे, सिर्फ भारतकी इतिहास-विषयक सामग्री ही नहीं, बल्कि रोम, यवन, मिश्र, असुर, 'कल्दान

मेक्सिको आदिके विषयकी कितनी ही सामग्रियाँ वहाँ संगृहीत हैं। नालन्दाको अभिमान है कि उसने अन्तर्राष्ट्रीय इतिहासको प्रस्तुत करनेमें बड़ी सहायता की है। दर्शनका अध्ययन नालन्दामें उत्तम रीतिसे होता है। नव्य, प्राचीन, पौरस्त्य, पाश्चात्य सभी दर्शनोंके अध्ययनका प्रबन्ध है। हमारे आचार्य दर्शनके महान् विद्वान् हैं। संस्कृत, पाली, जन्द, प्राकृत, यवनामी, लातीनी (रोमक) इत्यादि बहुत-सी भाषाओंके वहाँ अध्यापक हैं। भाषाओंके अध्ययनमे अब सचमुच बड़ी क्रान्ति हो गई है। प्रत्येक भाषाके अध्ययनके उपयुक्त वातावरण बना हुआ है। विशेष-विशेष भाषाओंके जिज्ञासुओंको यहाँ रखकर एक प्रकारसे दूसरी भाषासे उनका नाता ही तुड़वा दिया जाता है। उनका सभी समालाप उसी भाषासे होता है। वस्तुओंका नाम आदि अध्यापकगण आकृति-प्रदर्शनपूर्वक उसी भाषामें बतलाते हैं। इस प्रकार तीन वर्षमें छात्रोंका भाषापर अधिकार हो जाता है। ज्योतिष-तन्त्रका अध्ययन भी भारतमें सबसे अच्छा नालन्दामें होता है। राजगृहके वैभार-गिरिपर यहाँकी महान् वेधशाला है। ज्योतिष-साहित्यकी वृद्धिमें भी हमारे विद्यालयने भाग लिया है। भारतके 'नालन्दा' और 'तक्षशिला' के विद्यालय भूमण्डलके प्रमुख विद्या-पीठोंमें से हैं। 'तक्षशिला'ने आयुर्वेद, वनस्पति, प्राणि आदि शास्त्रोंमें बड़ी कीर्ति अर्जित की है।"

"पठन-काल विद्यालयमें क्या है? नियम तथा परीक्षा-क्रम कैसा है?"

"१७ वर्षका अध्ययन तो सबही के लिए अनिवार्य है। यह नियम भारतके ही नहीं, सारे भूमण्डलके विद्यालयोंके लिए एक-सा है। तीसरे वर्ष बालक बालोद्यानमें ले लिया जाता है। उसके बाद ६ वर्ष तक शिशु-कक्षा, ६ से १४ तक बाल-कक्षा और १४ से २० तक युवा-कक्षामें शिक्षा पाता है। साधारणतया यहीं पढ़ाई समाप्त हो जाती है। इसके बाद लड़के अपनी प्रवृत्ति और योग्यताके अनुसार भिन्न-भिन्न व्यवसायोंमें लग जाते हैं। किन्तु जिनकी प्रवृत्ति विद्या-व्यवसायोंमें देखी जाती है,

उन्हें अपने विषयमें योग्यता बढ़ानेका और भी अवसर दिया जाता है। यह समय प्रायः ४ से ६ वर्ष तकका है, किन्तु इसमें अवधि नहीं है। इसके बाद भी अध्ययन करते उन्हें आगे बढ़नेका पूर्ण अवसर प्राप्त है।"

इस प्रकार अनेक विषयोंपर हमारा वार्तालाप चलता रहा। अभी बात चल ही रही थी कि आठ बजनेका समय हो गया। इसी बीचमें अतिथिशालाकी श्री पद्मावतीने आकर अभिवादन कर लिया था, किन्तु हमारी गम्भीर बात छिड़ी देख वह और कुछ बोलना उचित न समझ, चली गई थीं। अब फिर उन्होंने आकर सूचित किया कि आठ बजनेवाले हैं, भोजनका गोला दगनेवाला है। चलनेके लिए तैयार हो जाना चाहिए।

बीसवीं सदी

मैंने विश्वामित्रसे पूछा—"यह गोला क्यों दगता है?"

"बात यह है कि हर आदमीके पास घड़ी रखनेकी फजूल-खर्ची राष्ट्रने उचित नहीं समझी। इसीलिए समयकी सूचना इस प्रकार दी जाती है। दिन-रातमें जलपान और भोजनके लिए चार समय हैं—सवेरे सात बजे प्रातराश, ग्यारह बजे दोपहरको मध्याह्न भोजन, तीन-साढ़े तीन बजे जलपान और फिर रात्रिमें आठ बजे ब्यालू। इन चारों समयोंपर तथा प्रातः जागनेके समय तोपका गोला छोड़ा जाता है।"

"किन्तु, मैंने बागमें सुमेधजीके पास तो घड़ी देखी थी।"

"हाँ, बाहर कामपर जानेवालों में एक मुख्य पुरुषके पास घड़ी रहती है, सबके पास नहीं। अच्छा, तो अब हमें चलना है। यह लीजिये, गोला भी—अररर-धम्।"

हम लोग जल्दी ही वहाँसे निकल पड़े। देव, पद्मावती और हम

दोनों चार आदमी थे। सड़कपर चारों ओर चाँदनीकी भाँति बिजलीकी रोशनी फैल रही थी। सड़क प्रशस्त और स्वच्छ थी। उसके दोनों ओर एक समान पक्के मकानोंकी पंक्तियाँ थीं। हर एक मकानके सम्मुख सड़क तक फूलोंके पौधे थे, जो अपनी शोभा और सुगन्धसे चलनेवालोंके चित्तको प्रफुल्लित कर रहे थे। प्रत्येक घरके सामने बरांडा था, जो सौ-सौ घरोंके लिए एक ही था। विश्वामित्रजीने बताया कि प्रत्येक पुरुषके रहनेके लिए तीन-तीन कमरे हैं, जिनमेंसे सामनेवाला बैठकका कमरा उतना ही बड़ा है, जितना कि वह कमरा, जिसमेंसे अभी हम आये हैं। इनमें दस कुर्सियाँ आसानीसे बिछाई जा सकती हैं। पीछेकी ओर चौड़ाईमें मुझसे ड्योढ़े, किन्तु लम्बाईमें आधे, दो कमरे हैं—एक सोनेके लिये, और दूसरा स्नानके लिए। यही तीनों कमरे मिलकर एक घर कहलाता है। [illegible] सौ घरोंकी एक श्रेणी है। हर श्रेणीके लिए एक-एक निर्वाचित प्रधान होते हैं, जो स्वयं भी उसी श्रेणीके एक घरमें रहते हैं। मुझे पीछे मालूम हुआ, कि सुमेध ऐसी ही एक श्रेणीके प्रधान हैं। प्रत्येक श्रेणीका एक विस्तृत हाल होता है। जिसमें कुछ पुस्तकें, वाद्य तथा और मनोरंजनकी वस्तुयें रहती हैं। यहाँ ही टेलीफोन भी लगा रहता है। इस सेवग्राम में ऐसी पच्चीस श्रेणियाँ हैं।

नर नारी सड़कपर आपसमें वार्तालाप करते चलते रहे थे। सबकी बातों का लक्ष्य मेरी ही ओर दिखाई पड़ता था। मैंने हजारों नर-नारियों को मार्गमें देखा, किन्तु उनमें एक भी बच्चा नहीं दिखलाई पड़ा। मैंने समझ लिया, तीन वर्षके बाद तो बच्चे ले ही लिये जाते हैं। सर्दीके कारण छोटे बच्चोंको शायद इस समय साथ न ले जाते हों। अब मैंने पासके वृहद् भवन पर मोटे अक्षरों में 'भोजनागार' देखा। अपूर्व विद्युच्छटा चारों ओर छिटक रही थी। मकानमें प्रविष्ट होनेके लिए बहुत-से द्वार थे। प्रविष्ट होनेसे पहले लोगोंने बरांडेमें गर्म जलके नलोंसे हाथ धो, लटकते रूमालोंसे हाथ पोंछे। फिर भीतर प्रविष्ट हुए। भोजन रखनेकी मेज-कुर्सियाँ वैसी ही थीं, जैसा कि बागमें देखी थी। हाल बहुत ही लम्बा-

चौड़ा था। उसमें पाँच सहस्र आदमी आरामसे बैठकर भोजन कर सकते थे। स्वच्छता और भीतरी सुन्दरता अपूर्व थी। रसोई-घर ज्ञात होता है, उससे पृथक् पीछेकी ओर था। मेरे वहाँ पहुँचनेके साथ ही ग्रामीण तथा अन्य पूर्व-परिचित पुरुष और महिलायें आ गई थीं। मुझे एक कुर्सीपर बैठाया गया। मेरी दाहिनी ओर देवमित्र और बाईं ओर विश्वामित्र थे। भोजन पहले से परोसकर तैयार रक्खा हुआ था। भोजनके पदार्थोंमें रोटी, मांस और दो तरकारियाँ थीं। एक टोकरीमें हलवा भी था। साथ ही एक तश्तरीमें थोड़ा फल और एक गिलास जल। अभी आकर दो मिनट हमें बैठना पड़ा, तब घंटा टनन्-टनन् हुआ, जिसपर देवमित्रने कहा, अब भोजन आरम्भ होना चाहिए। यह इतनी प्रतीक्षा इसीलिये की जाती है कि भोजन करने वाले सभी आ जायें। मुझे वह भोजन-मंडली बड़ी विचित्र मालूम होती थी। बीच-बीचमें पुरुषोंके साथ स्त्रियाँ भी बैठी निस्संकोच भोजन कर रही थीं। मैंने अपने दिलमें कहा, बीसवीं शताब्दीके भारतीय ऐसा स्वप्न कब देख सकते थे। यद्यपि मैंने अभी पूछा नहीं था और देखनेमें शिक्षा, सभ्यता, शुद्धतामें सभी स्त्री-पुरुष उच्च वर्णकेसे ज्ञात होते थे, तो भी मेरे मनमें होता था कि क्या ये सब ब्राह्मण-क्षत्रिय होंगे। कुछ तो मैंने पहले ही सुना था—अर्जुनके माता-पिता लंका-निवासी थे। यद्यपि वेष-भूषा सबका एक-सा था, किन्तु बहुत-से स्त्री-पुरुष यूरोपवालोंकी भाँति गोरे मालूम होते थे। इन सब बातों में मेरे दिलमें निश्चित-सा हो गया कि 'एक वर्णमिदं सर्वम्'।

भोजन करके सब लोगोंने उठ-उठकर अपने-अपने द्वारसे निकल गर्म नलोंपर हाथ धोया। मुंह पोंछनेके बाद अब सब लोग वहाँसे चले। ग्रामणीने पहले ही कहा था कि संस्थागारमें जमावड़ा होगा। अतः वहाँ ही को प्रस्थान किया गया। हाँ, एक बात यह भी देखी कि यद्यपि हाथ-मुंह सबने धोया, किन्तु जूते को किसीने खोलकर पैर नहीं धोया और न दूसरे कपड़ोंको भी किसीने उतारा।

अब हम लोग वहाँसे संस्थागारको चले; यह भव्य भवन थोड़ी ही दूरपर था।

मकान बहुत ऊँचा, सुन्दर था—बाहरसे बिजलीकी रोशनी जगमगा रही थी। यहाँपर भी मोटे-मोटे प्रकाश-अक्षरोंमें मुख्य द्वारपर 'संस्थागार' लिखा हुआ था। भीतर प्रविष्ट हुए।

देवमित्रने कहा—"जब तक सब लोग आ जाते हैं, तब तक आप रंगमंचके पिछले कमरेमें बैठें।" जाकर अभी थोड़ी ही देर वहाँ बैठे होंगे कि इतनेमें रंगमंचसे घंटीका शब्द हुआ, जिसे सुनकर ग्रामीणने चलनेका संकेत किया। मेरे पहुँचते ही मुझे देखकर सारी आँखें मेरी ओर हो गईं। 'संस्थागार' की आभ्यान्तरिक शोभा अत्यन्त मनोहारिणी थी। रंगमंचपर तरह-तरहके रंगीन चित्र-विचित्र प्रखर विद्युत्प्रदीपोंका प्रकाश था। भवनकी छत बहुत ऊँची था। बड़े-बड़े झरोखे लगे हुये थे। विद्युल्लताके प्रकाशसे रातका दिन हो रहा था। यद्यपि सर्दी पड़ रही थी, झरोखे और द्वार चारों ओर खुले थे, किन्तु अन्तर्हित तापकयंत्रों की गर्मीसे भीतर किसी प्रकारकी सर्दी मालूम नहीं होती थी। दीवारों और छतोंपर भी बहुत अच्छे रंग-बिरंगे बेल-बूटे बने हुये थे। जहाँ-तहाँ महापुरुषोंके बड़े-बड़े चित्र लटक रहे थे, जिनमें विचारक, कवि सभी प्रकारके पुरुष थे। कहीं बुद्ध थे, तो कहीं रूसो, कहीं मार्क्स तो कहीं एंगेल्स, सुकरात, प्लेटो, लेलिन, न्यूटन आदि अनेक जगन्मान्य पुरुषोंके चित्र उस विस्तृत भवनोंमें शोभा दे रहे थे। बीच-बीचमें बहुतसे सुभाषित टँगे थे।

मैंने जन-समाजकी ओर देखा, वहाँ न कोई कृश था, न मलिन। स्त्री-पुरुष सब गद्दीदार बेंचोंके ऊपर बैठे थे। उस विस्तृत भवनमें पाँच सहस्त्र आदमी बैठे होंगे, तो भीं पीछेकी ओरकी बेंचोंपर और भी आदमी आसानीसे बैठ सकते थे। इस भवनका उपयोग राजनैतिक, साहित्यिक सभी कामोंके लिये होता है। ग्राम-सभाकी बैठकें यहाँ ही होती हैं। मनोरंजनार्थ बाहरी या अपने यहाँसे प्रवीण लोग संगीत और नाट्याभिनयसे यहीं सबको प्रसन्न करते हैं। इतिहास, विज्ञान आदि पर

व्याख्याताओंके व्याख्यान भी यहीं होते हैं। अनेक राष्ट्रीय तथा सामाजिक महोत्सव यहाँ पर मनाये जाते हैं।

लोगोंके शान्त बैठते ही देवमित्रने उठकर आजकी सभाका सभापति होनेके लिए श्री इस्माइलका नाम प्रस्तावित किया। प्रस्ताव करते समय उन्होंने कहा—"यद्यपि हम सबोंके लिए साथी इस्माइल हृदयसे परिचित हैं, किन्तु आजके अपने श्रद्धेय अतिथिकी जानकारीके लिए इतना कह देना आवश्यक मालूम होता है, कि साथी इस्माइल अनेक बार हमारे ग्रामके ग्रामणी, तथा नेपाल प्रजातंत्रके सभापति रह चुके हैं। यद्यपि आप साठ वर्षके ही हैं, किन्तु गुणों से हम सब उन्हें वृद्ध समझते हैं। एक बात और है, जो आजके हमारे अतिथिके सम्बन्धमें उनको समीपतर बनाती है। यही नहीं कि वह नालन्दा-विद्यालयके पुत्र हैं, बल्कि हमारे अतिथिको महापुरुष शफीका नामस्मरण होगा; आप उसी वैशाली-वासी महापुरुषके पौत्र हैं। आपकी गणना संसारके बड़े-बड़े राजनीति-विशारदोंमें है। हमारे प्रान्त, विशेषकर हमारे सेवग्रामको इनपर अभिमान है, जहाँपर कि शिक्षा-समाप्तिके बादसे ही आप रहते हैं।"

लोगोंने करतल-ध्वनि-पूर्वक प्रस्तावको स्वीकृत किया और इस्माइल उठे। वास्तवमें देखने मात्रसे उनके चेहरेपर महापुरुषका तेज झलकता था। यथार्थमें उनको ६० वर्ष का युवक कहना चाहिये। इनको ही क्या ६०-७० वर्षका अबका आदमी बीसवीं शताब्दीके ३५-४० वर्षके हृष्ट-पुष्ट आदमी-सा मालूम होना है। जैसे और बातोंमें आजके संसारने उन्नति की है, वैसे ही इस बातमें भी श्री इस्माइलने कहा—

"साथियो! अनेक ज्ञानी-वयोवृद्धोंके सम्मुख मुझे इस सेवाके लिए स्वीकार करनेका कारण आपकी निष्कारण दयाके सिवा और कुछ नहीं हो सकता। मैं तो ऐसे ही महापुरुषोंके शुभागमनका सन्देश पा आनन्दमें मस्त हो रहा था। मुझे गर्व है कि मैंने विद्या-द्वारा ही नालन्दामें जन्म नहीं लिया, बल्कि मेरा जन्म भी वहींका है। पितामह, आप लोगोंको विदित है, पूरे डेढ़ सौ वर्षके होकर मरे थे। वे सुनाया करते थे कि कैसी कठिनाइयोंमें नालन्दाका पुनरुद्धार किया गया। जबकि उनकी अवस्था

पच्चीस वर्षकी थी, तभी उन्होंने विद्यालयके लिए अपना जीवनदान दिया, और अन्तमें वहीं अग्नि-समाधिस्थ भी हुए। वह कहते थे कि हमारे साथ अनेक महापुरुष उस समय नालन्दाकी सेवा करते थे। उस समय विद्यालयकी भूमिपर थोड़ी-थोड़ी दूर पर छोटे-छोटे ग्राम बसे हुए थे। विद्यालयके पुरातन भवनोंके ध्वंसावशेष भीटों जैसे थे। उस समय बुद्ध-पोखर आदि की यह शोभा न थी। बड़गाँव नामका एक छोटा-सा ग्राम वहाँ था, जहाँ अबभी सूर्यका मन्दिर है। कार्तिककी सूर्य-षष्ठीका मेला अलबत्ता एक दिनका होता था, जिसमें महिलायें ही अधिक सम्मिलित हुआ करती थीं। आपको ज्ञात है, उस समय स्वार्थान्धताका साम्राज्य था। पुरुष स्त्रियोंकी शिक्षामें धर्मकी हानि समझते थे। हमारे मुसलमान भाइयोंने धर्मके नामसे स्त्रियोंको जकड़बन्द किया, जिसकी देखादेखी समस्त उत्तरी भारत स्त्री-जातिका एकान्त कारागार हो गया था। यह बड़ी भारी कृपा समझिये, जो स्त्रियाँ उस मेलेमें धर्मके सम्बंधमें जाने पाती थीं। यह तो सभी ने सुना था कि आचार्य विश्वबन्धु ३० वर्ष तक विद्यालयकी सेवा करके उत्तराखंडको चले गये; और तबसे कुछ पता नहीं लगा किन्तु यह किसको आशा थी कि हम लोगोंका ऐसा सौभाग्य उदय होगा। आज तीन पीढ़ियाँ प्रतीक्षा करती चली गईं। हम सब जब इन बातोंको सुनते थे तो स्वप्न देखते थे—यदि महापुरुष का फिर दर्शन होता, यदि वह फिर पधारते, तो उन्हें अपने सिर-आँखों पर रखते। हम लोगोंने स्त्रियोंके ऊपर वह अत्याचार होते जन्मसे ही नहीं देखे। हम लोगोंने तो जन्मसे मनुष्योंके ऊँच-नीच होनेके शब्द ही नहीं सुने। हमने तो धर्मके नामसे कटमरनेकी चर्चा भी न सुन पाई, किन्तु इतिहास आपने पढ़ा है—आपके देशका मुख उज्ज्वल करनेवाले अध्यापक विश्वामित्र यही हैं। इतिहासमें अब जब हम लोग धर्मके नामपर मार-काट पढ़ते हैं, तो हँसते हैं—वैसे ही हंसते हैं, जैसे एक राजाकी बातके कारण सहस्त्रों पुरुषोंको पतंगोंकी भाँति युद्ध-अग्नि में जलते सुनने पर। जिन्होंने उस अन्धकार-युगमें मनुष्य-

जातिके कल्याणके लिये भगीरथ-प्रयत्न किया, वे धन्य हैं। आज महा-पुरुष विश्वबन्धुकी पवित्र मूर्ति हमारे मध्यमें है। (महापुरुषोंकी तस्वीरों की ओर करके) आज हम समझते हैं, ये सारे देवगण मूर्तिमान् सजीव हमारे मध्यमें हैं। वास्तवमें क्या हमारे हृदयका भाव, हमारा भक्ति-उद्‌गार वाणी द्वारा प्रकट किया जा सकता है?"

"साथियो! हमारे गाँवका सबसे अधिक सौभाग्य है कि आप पहले यहीं पधारे। आज वस्तुतः अनिर्वचनीय आनन्दका समुद्र हमारे हृदयोंमें तरंगित हो रहा है। हम पूजनीय महात्माको किस प्रकार पूजें, किस प्रकार स्वागत करें, यह समझमें नहीं आता। ऐसे अपूर्व महापुरुषके लिए हमारे पास कौन सा द्रव्य है? अधिक कुछ नहीं, सिर्फ इतना ही—महात्मन्! हम सब आपके कृतज्ञ हैं, आपके ऋणोंका हमसे परिशोध नहीं हो सकता। साथियो, यद्यपि हम सब लालायित हैं कि आपके मुँहसे कुछ सुनें; किन्तु यह लोभ हमारा बलात्कार होगा। दो सौ साठ वर्षका शरीर, उसमें भी दो सौ वर्षका लम्बा उपवास। अस्तु! अब मैं अधिक आप सबकी ओरसे महात्माकी सेवा में और क्या कह सकता हूँ, सिवा इसके कि सत्पुरुष! हम आपके कृतज्ञ हैं, हम आपसे उऋण होने योग्य नहीं।"

मैंने यह सब कथन बड़ी सावधानीसे सुना। सुनते समय कितने ही अतीत दृश्य मेरे मानस-नेत्रों के सम्मुख आते-जाते थे। कथन-समाप्तिके बाद ही मैंने खड़े होकर कहा—

"बन्धुओ! मैं जो कुछ देख रहा हूँ, यही एक स्वप्न था, जिसको जगृातिमें लानेके लिए लाखोंने अपना जीवन-सर्वस्व अर्पण किया। तुम समझ सकते हो, उस स्वप्नको जीते-जागते देखते हुए मेरे हृदयमें कैसा आनन्द होता होगा। अभी आजके जगत्‌का कितना अंश मैंने देख ही पाया है; किन्तु जो कुछ देखा है, वही क्या कम है? मान लो, आज मैं यदि १९२३ के किसी गाँवमें जाता, तो क्या यह सेबग्राम मिलता? आपका पाँच हजार की आबादीका यह गाँव है, ऐसे ही ग्रामोंकी उस समय की अवस्था सुनाता हूँ। मिट्टीके कच्चे मकान, जिनमें कहीं-कहीं

मकानकी मिट्टी गिर गई है। कहीं एक कोना खिसक पड़ा है। फूसकी छत और खपड़ैल टूटी-फूटी पड़ी हुई है। दस घरमें शायद दो घर ऐसे होंगे, जिनमें बरसातकी बूँदें भीतर न टपकती हों। जगह-जगह पतली-पतली गलियोंमें कूड़ा-कर्कट फेंका हुआ है, वहीं नाबदानका सड़ा पानी बह रहा है। लड़के वहीं पाखानेके लिए बैठ जाते हैं। बरसातके दिनोंमें तो और भी सड़-सड़कर कीचड़ और दुर्गन्धकी भरमार हो जाती थी। बस्तीके चारों ओर लगे हुए खेत ही लोगोंके पाखाना जानेकी जगहें थीं। कुत्ते जगह-जगह फिरते रहते थे। किसी प्रकार मुश्किलसे, जिस रास्तेसे गाड़ी जा सके, वही उस समयकी सड़क थी। आज-कल वे बैलगाड़ियाँ और एक्के कहाँ हैं? प्राचीन वस्तुओंके संग्रहालयमें उन्हें आप लोगोंने देखा होगा। वही उस समयकी सवारी थी। धनी लोग अच्छे-अच्छे घोड़ों की गाड़ियाँ रखते थे। हाथी भी सवारीके लिये रखे जाते थे। अब तो आपके यहाँ मोटर ही सवारीके लिए, मोटर ही लादनेके लिए, गाँवके सभी काम मोटर हीसे होते हैं। उस समय यह सभी काम आदमी या बैलगाड़ी से होते थे। मैंने भी कई बार रात-रात भर बैलगाड़ी पर चढ़कर ८-१० कोसकी यात्रा पूरी की थी।

"हाँ, मैं उस ग्रामका वर्णन कर रहा था। बीचमें गाँवकी उसी पतली सड़ककी दोनों बगल दूकानें होती थीं, जिनमें हलवाई बतासे और लड्डू बेचते थे, बजाज कपड़े, पंसारी रंग-मसाले; कोई साग-तरकारी, कोई सुई-धागा, कोई नून-तेल हफ्तेमें एक या दो दिन बड़े हाट लगते थे, जबकि आस-पासके गाँवोंसे आवश्यक चीजोंको खरीदनेके लिए ज्यादा आदमी आया करते थे। कोई पैसोंसे चीजें खरीदता था, कोई अनाजसे बदलता था। दूकानदार इस खरीद-बेचसे कुछ प्राप्त कर अपना निर्वाह करते थे। लोगोंकी अवस्थाकी क्या पूछते हो? आप लोगोंको तो उस समयका बड़े-से-बड़े धनिक भी देखता, तो देवता कहता। पाँच छः वर्षके लड़के चार अंगुल कपड़ेकी लँगोटी लगाये फिरा करते थे। कुछ धनिकों को छोड़कर, साधारणतया सभी एक अँगोछा और धोती ही से काम चलाते

थे। सो भी मैले-कुचैले, और बहुतोंके तो फटे चीथड़े। स्त्रियाँ भी एक-एक मैली साड़ियोंसे गुजारा करती थीं, जिन्हें चिथड़े-चिथड़े हो जानेपर भी पेबंद लगाकर पहनती ही जाती थीं। मैंने बुन्देलखण्डमें ऐसी अनेक स्त्रियाँ देखी थीं, जिनका लहँगा एकदम जर्जर हो गया था और घिरावेकी घुमावटके कारण ही आर-पार दिखाई नहीं पड़ता था; अन्यथा शायद ही कहीं एक अंगुल साबित कपड़ा हो। वे क्या करें, गरीबी ही ऐसी थी।"

"फिर अत्याचार कैसा ? स्त्रियोंका जूता पहनना उस समय बहुत-सी जातियोंमें एक तो पाप समझा जाता था; दूसरे, पहननेके लिए नसीब भी कहाँसे होता। जाड़ेके दिनोंमें फटे चिथड़ोंको सीकर अगर किसीने एक गुदड़ी बना पाई, तो समझ जाओ, उसने बड़ा ऐश्वर्य पा लिया। पुआल बिछाकर लड़के वाले सब उसी गुदड़ीके नीचे दबकर सो जाते थे। सोनेके लिए चारपाइयाँ सबको नसीब न थीं। कपड़ोंकी तङ्गीसे बहुतोंको जाड़ा भी पुआल ओढ़कर काटना पड़ता था। लकड़ियाँ कहाँ नसीब थीं कि आग तापते ? यदि घास-फूस इकट्ठा कर पाया, तो बड़ी प्रसन्नतासे उसके किनारे बैठकर परिवारने थोड़ी देर धुआँ लिया।"

"मुझे खूब याद है। एक समय मैं जाड़ेके दिनोंमे बहुत सबेरे ही रास्ते से जा रहा था। उसी रास्ते पर फटी-पुरानी, मैली-कुचैली साड़ी पहने एक बुढ़िया सूपमें कुछ लिये आ रही थी। उसके पीछे-पीछे दो लड़के चार-पाँच वर्ष के थे। उनमेंसे बड़ेके पास एक लँगोटी थी, छोटेके बदनपर एक सूत भी नहीं था। माघ-पूसका जाड़ा पड़ रहा था। सर्दीके मारे दोनों बच्चे ठिठुरे जा रहे थे। उन्होंने अपनी मुट्ठियोंको खूब कड़ी बाँधकर कमर झुका ली थी। ऐसे लड़के एक-दो नहीं, लाखों उस समय भारतमें थे।"

"सड़ा-गला, खराब अन्न भी उस समय करोड़ों आदमियोंको पेट भर न मिलता था। कितने ही लोग पेटके लिए गाँव-गाँव भीख माँगते फिरते थे। मैंने अपनी आँखोंसे अनेक स्थानोंपर ऐसे लड़कों और आदमियोंको देखा था, जो कि फेंके जाते जूठे टुकड़ोंको कुत्तोंके मुँहसे-

छीनकर खा जाते थे। यह बात नहीं कि लोग परिश्रमसे घबराते थे। दो-चार चाहे वैसे भी हों, किन्तु अधिकतर ऐसे थे, जो रातके चार बजेसे फिर रातके आठ-आठ, दस-दस बजे तक भूखे-प्यासे खेतों, दूकानों, कारखानोंमें काम करते थे, फिर भी उनके लिए पेट-भर अन्न और तनके लिए अत्यावश्यक मोटे-छोटे वस्त्र तक मुवस्सर न होते थे। बीमार पड़ जानेपर उनकी और आफत थी। एक तरफ बीमारीकी मार, दूसरी ओर औषधि और वैद्य का अभाव, और तिसपर खानेका कहीं ठिकाना न था। १९१८ के दिसम्बरका समय था, जबकि सिर्फ इन्फ्लुयेंजाकी एक बीमारीमें, और सो भी ४-५ सप्ताहके अन्दर ६० लाख आदमी भारतवर्षमें मर गये। मरने वाले अधिकतर गरीब थे, जिनके पास न सर्दीसे बचनेके लिए कपड़ा था, न पथ्यके लिए अन्न; न दवाके लिए दाम था, न रहनेके लिए साफ मकान। वह पशु-जीवन नहीं, नरकका जीवन था। आदमी कुत्ते-बिल्लीकी मौत मरते थे। मुझे आजकलकी भाषाका बोध नहीं, अतः उसी पुरानी भाषा हीमें बोल रहा हूँ। संभव है, आप लोगोंको कहीं-कहीं समझनेमें कठिनाई हो।"

महिलाओ और सज्जनो ! जिस समय देशके अधिकांश मनुष्य इस प्रकारका जीवन व्यतीत कर रहे थे, उस समय बहुत थोड़े आदमी थे, जो इनसे कुछ अच्छी दशामें थे, जिन्हें उस समयकी परिभाषामें खाता-पीता कहते थे। हाँ, अँगुलियोंपर गिनने लायक ऐसे आदमियोंका समूह था, जिन्हें सब प्रकारके भोग सुलभ थे। ये लोग धनिक थे और नवाब, राजा, बाबू, तालुकेदार, बड़े-बड़े जमींदार, सेठ-साहूकार, महाजन कारखानेदारके नामोंसे पुकारे जाते थे। यद्यपि एकाध उनमेंसे कोई निकल आते थे, जिन्हें उपरोक्त दुखियोंका कष्ट प्रभावित करता था, परन्तु ऐसोंकी संख्या नहींके बराबर थी। धनी लोग बड़े-बड़े महलोंमें रहते थे, जो दो महले, चौ-महले, पंच-महले होते थे। उन्हें केवल अपने शरीरकी सेवाके लिए बहुत-से स्त्री-पुरुष परिचारकोंकी आवश्यकता थी। कितनेही राजाओंके पास तो दो-दो, तीन-तीन सौ लौंडियाँ थीं; दो-दो,

चार-चार सौ स्त्रियोंसे उनका रनिवास भरा रहता था। इसपर भी ये लोग धर्म-धुरन्धर कहे जाते थे। किसीकी इज्जत बिगाड़ देना, किसीका स्वत्व अपहरण कर लेना, इनके. इशारोंका काम था। जब ये चलते थे, तो इनके आगे-पीछे सैंकड़ों आदमी इनकी शरीर-रक्षा के लिए चलते थे। कितने तो पालकियों पर चलते थे, जिन्हें आदमी ही ढोते थे। गाली तो सदैव इनके मुखारविन्दोंकी शोभा थी। जरा-जरा सी बातमें अपने आदमियोंका वह उसीसे सत्कार किया करते थे। आप सो रहे हैं—दूसरे उनके पैर दबा रहे हैं, पंखे झल रहे हैं। ये लोग अपने हाथसे कोई भी काम करना अप्रतिष्ठाजनक समझते थे। एक आदमीके लिए कितनी ही मोटरें, घोड़े-गाड़ियाँ, टमटम, सवारी के घोड़े, हाथी रहते थे। उनमेंसे बहुत तो दिन-रात शराब, भङ्ग, अफीमके नशोमें मस्त रहते थे। स्वयं परिश्रम कुछ भी न करते हुए दूसरेकी मेहनतकी कमाईमें आग लगाना ये लोग खूब जानते थे। दूसरे के जखम पर 'सी' करनेवाले तो कम, पर नमक लगानेवाले अधिक थे। सिर्फ अपने एक शरीरके खाने-कपड़ेपर ये लोग जितना खर्च करते थे, उतने से हजार आदमी सानन्द जीवन व्यतीत कर सकते थे। इनको अकेले रहने के लिए सैकड़ों आदमियोंके रहने लायक मकान होते थे। सबसे असह्य बात तो यह थी कि दुराचार और अत्याचार की साकार मूर्ति होने पर भी ये लोग धर्मके स्वरूप बनकर संसार में ध्रुव-पद ग्रहण करना चाहते थे, जिसमें कुछने यदि सफलता पाई हो, तो भी सन्देह नहीं। वह अपने सामने मनुष्यताका मूल्य नहीं समझते थे। इनका जादू न्यायाधीश, धर्माध्यक्ष, पंडित-मौलवी-पादरी सभीपर था। सभी इनकी 'हाँ-में-हाँ' मिलाते तथा इनके लाभकी बातके लिए अपने-अपने ग्रन्थों से प्रमाण देनेको तत्पर थे। पंडित कहते "धनी-गरीब, राजा-प्रजा अपने-अपने पूर्व जन्मकी कमाईसे होते हैं। यह सनातनसे चला आया है। यह भगवान की इच्छा है। वेद-पुराण सब इसके साक्षी हैं।" मौलवी कहते थे—"खुदाने दुनियाकी भलाई ही के लिए अमीर-गरीब,

बादशाह-रैयत बनाया, नहीं तो दुनिया का काम कैसे चलता ? सारे रसूल, पैगम्बर इस बातके कायल और अपनी किस्मतपर सन्तुष्ट थे। बादशाह और मालिकपर खुदाका साया है" ऐसे ही सभी एक ही सुरमें अलापते थे। असल बात तो यह थी कि लाखों परिश्रमी दीनों का भाग छीनकर धनी लोग अकेले ही सब न खाकर कुछ टुकड़े इन लोगों को भी फेंक देते थे, जिनपर लोग हाँ-में-हाँ मिलाना अपना कर्त्तव्य समझते थे। धन्यवाद है कि अब वह जादू उतर गया।

"अब तो आप सबको यह बातें सुन-सुनकर आश्चर्य होता होगा— क्या वे लाखों आदमी सचमुच भेड़ थे, जिन्हें एक धनी अपनी अँगुलीके इशारे पर नचाता था ? यदि लोग जरा भी अपनी बुद्धिसे काम लेते तो क्यों गुलामोमें पड़े रहते ? सचमुच आज यह तर्क बहुत सरल है, किन्तु उस समय यह सोचना असम्भव मालूम होता था--शेखचिल्लीका महल कहलाता था। आजकी अवस्थाके शतांशका भी विचार रखनेवाले उस समय पागल, खब्ती, अधर्मी, मनुष्यताके शत्रु समझे जाते थे, शिक्षा लाभ करके प्रत्येक आदमी उसी धनिक श्रेणी का बनना चाहता था, चाहे हजारमें कोई एक ही हो पाता हो। इस प्रकार शिक्षित और धनिक तो इस तत्वकी ओर ध्यान न देते थे और गरीब इसे असम्भव समझते थे। वह अपने ही कमजोर ख्यालों से इस प्रकार जकड़े हुए थे कि सचमुच उन्हें ऐसा होना असम्भव मालूम पड़ता था। आप कहेंगे—कैसी मूर्खता है। अपनी मेहनतकी कमाई दूसरेको खाने न देकर हमीं खायेंगे, इतनी बात समझना कौन कठिन था ? किन्तु उनके लिये तो यही लोहे का चना था। उधर धनी लोगों की ओर से कहा जाता था—ऐसा होनेसे धर्म नहीं रहेगा; जाति-मर्यादा चली जायगी, कलयुग आयेगा। अभाग्य-वश श्रमजीवी लोग भी अनेक ऊँच-नीच श्रेणियों में विभक्त थे। बिहार का ब्राह्मण श्रमजीवी कहलाता था–गरीब हैं तो क्या, खानेको नहीं मिलता तो क्या, किन्तु चमार, अहीर, राजपूत 'पा-लगी' तो करते हैं–'महाराज' तो बोलते हैं ? भला चमार, अहीर हमारे बराबर हो जायेंगे ? सचमुच

बड़ा अधर्म होगा ! भूखा मरना अच्छा; अपनी कमाई दूसरा खाय, वह भी अच्छा; किन्तु चमार को अपने ही ऐसा मनुष्य समझना ठीक नहीं। ऐसे ही, अपने से ऊँची जाति के पठान-सैयदके अभिमानको, चाहे गाँवका मोमिन-जुलाहा दिलसे अच्छा न समझता हो, किन्तु अपनेसे नीच गिने जानेवाले भंगी को अपने बराबर होने देना उसे भी अभीष्ट न था।

"अब अन्तमें आप लोगोंके वर्तमान ध्येय के विषय में कुछ कहकर मैं अपना वक्तव्य समाप्त करता हूँ। सबसे प्रथम तो यह कि यह न समझ बैठो कि हम अब अन्तिम स्थान पर आ गये; अब हमारी सभी बातें पूर्ण हैं, अब हममें कोई त्रुटि नहीं। जिस समय यह विचार आ जायगा, उसी समय से आप पीछे की ओर खिसकने लगेंगे आपका ह्रास होने लगेगा। मनुष्य कहाँ तक उन्नति कर सकेगा, यह असीम है। जिस प्रकार कुछ दिनों-पूर्व ज्योतिषमें अति दूर एक सितारा आविष्कृत हुआ था, आगे उससे भी दूर दूसरा मिला है; उसी प्रकार, लाखों वर्षोंतक दूर-से दूर सितारोंका पता दूरबीनों और फोटो-चित्रोंसे लगता जायगा। वैसे ही हमारी उन्नति, हमारे संशोधनका क्षेत्र अनन्त दूर तक विस्तृत है। दूसरी बात ज्ञानकी वृद्धि है। इसमें सन्देह नहीं, उस समय शिक्षामें जो उच्चताकी अवधि थी, अब वहीं से उसका आरम्भ है। आपका समाज बहुत सुरक्षित, और सभ्य है; किन्तु आप उन्नति करके आजके अन्तको कलका आरम्भ बना सकते हैं। आपके उत्तराधिकारियोंको भी ऐसा अधिकार है। यह बड़े आनन्दकी बात है कि आज विद्या सारे मानवके हितके लिये पढ़ी जा सकती है। आज विद्याका वह पारितोषिक नहीं, मूल्य नहीं, जो दो शताब्दियों पूर्व रखा जाता था। आजकी सभी समृद्धिका मूल वही ज्ञान—वही विद्या—है, जिसकी कमीके कारण पहले लोग मनुष्यतासे गिर गये थे। इसकी वृद्धिमें उपेक्षा और इसके प्रचारमें असावधानी होना सभी खराबियों की जड़ है। उन्नतिकी आकांक्षा और ज्ञान का अधिक-से-अधिक प्रसार यही दो मूल बातें हैं; जिनसे आपने अब तक उन्नति की है और

आगे भी इसके लिये असीम क्षेत्र पड़ा हुआ है। मैं आपके प्रेममय भावसे अत्यन्त सन्तुष्ट हूँ। और बस।"

मेरे व्याख्यानकी समाप्तिपर साथी इस्माइलने एकबार उठकर फिर मुझे धन्यवाद दे, सभा विसर्जित की। मैं विश्वामित्र, इस्माइल, देवमित्र, इस्माइलकी पत्नी प्रियम्वदा तथा दूसरे सज्जनों के साथ विश्राम-स्थान पर आया। रात्रिके दस बज चुके थे, मैंने उनकी सूचना और प्रार्थना के उत्तर में संक्षेप में कहा—कल-परसों और चौथे दिन मैं यहाँ ही रहकर आस-पासका तथा आपके ग्रामका अध्ययन करूँगा। इसके याद अध्यापक विश्वामित्रके साथ यहाँ से सीधे नालन्दा जाऊँगा। वहाँ से भारत के प्रधान-प्रधान स्थानोंकी स्थितिका अध्ययन करके फिर कहीं बाहर कदम रखूंगा। आप सार्वभौम संघपति श्रीदत्तको भी इसकी सूचना दे दें। देवमित्रने कहा, आपके साथ साथी इस्माइल और साथिन प्रियम्वदा भी बराबर रहेंगी, और यहाँ की बातोंके समझनेमें सहायता पहुँचायेंगी। मैंने इसके लिये कृतज्ञता प्रकट की। इसके बाद सब लोग अपने-अपने स्थानोंको चले गये। विदा होते समय इस्माइलजीने भी सलाम नहीं किया। मुझे पहलेही से इन लोगों के मजहब से दूर हो जाने की झलक दिखलाई पड़ती थी, और पूछने की इच्छा होती थी। अब वह इच्छा और बलवती हो गई। विश्वामित्र पास ही बैठे थे। मैंने पूछा—

विश्वामित्र! यद्यपि मैंने लोगोंके नाम हिंदू-मुसलमान जैसे सुने; किन्तु, उनकी पोशाक, बातचीत, सलाम-दुआमें कोई फरक नहीं मिलता, क्या सभी मजहब मिल गये?"

"मिल नहीं गये; प्रगति विरोधी इन मजहबों को हमने निकाल फेंका। नामोंमें भी बहुत परिवर्तन है, तो भी लोग जैसी इच्छा होती है, वैसा नाम रख लेते हैं।

"और भाषा? इस समय सारे भारत की मातृभाषा 'भारती' है, जिसे आपके समयकी हिन्दी-उर्दूकी प्रतिनिधि कहना चाहिये। यही एक भाषा सर्वत्र बोली जाती है, लिपि भी नागरी है। अब भाषाकी कठिनाइयाँ नहीं

हैं। भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें साहित्यिक-धार्मिक जिज्ञासासे दूसरी भी भाषायें पढ़ी जाती हैं; किन्तु है 'भारती' भाषा ही सर्वेसर्वा। चाहे किसी भी प्रान्त का भारतीय क्यों न हो, उसकी भाषा भारती होगी। अब पुराने पक्षपात तो रहे नहीं, इसलिये सबके भाषा, भाव, भेस एक हो गये हैं।"

मैंने अब अधिक देर तक विलम्ब करना उचित नहीं समझा। समय की व्यवस्थाओं से मुझे अनुमान हो गया था कि शयन आदिका भी अवश्य कोई नियम होगा। विश्वामित्र भी अपने कमरेमें सोने चले गये। मैं भी अपने पिछले सोनेवाले कमरेमें पलँगपर जा लेटा। अभी मेरी आँखोंमें नींद नहीं थी। सामने दीवारसे लगा हुआ बिजली का शुन्डाकार प्रदीप अपना प्रकाश फैला रहा था। तापक मकानको गर्म किये हुये था और वहाँ सर्दीका नाम न था। आज षष्ठी तिथि मालूम होती थी। चन्द्रमा अभी वृक्षोंके शिखरसे मेरी कोठरीमें झाँकने लगा है। सामनेका पर्वत कुछ दूर है। चाँदनी चारों ओर छिटकी हुई है। रात्रि स्तब्ध है। मेरे बिस्तरेपर आनेके साथ ही रेल का घरघराना सुनाई दिया था। रात्रिकी इस नीरवतामें एक-एक करके आजके प्रत्येक दृश्यकी फिर एक-एक बार आवृत्ति होने लगी। साथ ही मनने सब पर एक-एक स्वतन्त्र टिप्पणी भी करनी आरम्भ कर दी। स्त्री-जातिकी स्वतन्त्रताका दृश्य सम्मुख आते ही कहा——तब तो एक-एक हाथके घूँघट और बुर्कोंकी बोरा-बन्दी अब काहेको दिखाई देने लगी? अब दो बीस, चार बीस करके गिननेवाली स्त्रियाँ कहाँ मिलेंगी? अब लड़कोंके पूछनेपर चन्द्रमाके धब्बे, तारा, आकाश-गङ्गाकी विचित्र कथा सुनानेवाली मातायें कहाँ मिलेंगी? धनिकोंका ख्याल आते ही सोचा——तो अब राजाबहादुर, महाराजाबहादुर, रायबहादुर, खानबहादुर, नवाबबहादुर होनेके लिये कोई न मरता होगा। अब इन पदोंके दाता-प्रतिगृहीत भूमण्डलसे सदाके लिए विदा हो गये। आजके गाँवका दृश्य सम्मुख आते ही पुराने गाँव का चित्र दिलसे भागने लगा। शायद इसीलिए कि आसानीसे उसका ज्ञान

न हो जाय। मैंने भी मनसे कह दिया—तो इसकी पर्वाह क्या, तुम न दिखलाओगे, तो जादू-घरमें देखनेसे तो रोक न सकोगे ?

एक-एक करके सब टिप्पणियां समाप्त हुईं ; इसी बीच ग्यारह बजने का घण्टा भी बज गया। मैंने कहा, अब बारह भी थोड़ी देरमें बजेगा ? कलके कर्त्तव्यका थोड़ा-सा विचार करके सो जाना अच्छा है। सोचा—सेवग्रामकी बागोंकी बातें तो देख-सुन लीं। घरों और श्रेणियोंकी भी बात मालूम हो गई। संस्थागार-भोजनागार भी देख ही लिया। सुमेधने कहा था कि तीन वर्षके होते ही बालक विद्यालयोंमें भेज दिये जाते हैं। देखना है कि तीन वर्षके बालक कैसे हैं; चिकित्सालय भी देखना है, गाँवकी सफाई आदिकी बातें जाननी हैं; यही मुख्य बातें हैं। इस्माइल और विश्वामित्र दोनों ही विस्तृत अनुभववाले पुरुष हैं। इनके साथ सबका देखना और भी अच्छा होगा। इस प्रकार विचार कर मैंने आज निद्रा-देवीकी गोद में विश्राम लिया।

ग्राम और ग्रामीण

पाँच बजनेसे पहले ही मेरी नींद खुल गई थी। मैं उठकर उस समय खिड़कीसे आकाशकी ओर देख रहा था। चारों ओर तारे बिखरे हुए थे। चन्द्रमा मेरे सम्मुख नहीं था, किन्तु चाँदनी नजर आती थी। चाँदनीमें खिड़कीके बाहर लताओं पर लदे हुए फूल खूब दिखाई पड़ते थे। गुलाबकी भीनी-भीनी सुगन्ध दबे-पाँव मेरे कमरेमें आ रही थी। अभी दस-पाँच मिनट ही बीते होंगे, कि गोलेकी आवाज हुई। पाँच बज गये। थोड़ी ही देरमें देव भी आ गये। उन्होंने पहले झाँककर देखा; जब मुझे बैठा पाया तो भीतर आये। पूछा—"क्या स्नान अभी होगा; यदि अभी, तो क्या यहीं घरके नलपर स्नान-पात्र में या स्नानागार के गर्म-कुण्ड में ?"

मैंने कहा, मैं यहीं स्नान कर लूंगा। कल तो मुझे शौचकी आकांक्षा

ही नहीं हुई थी। अब देवने बतलाया कि पीछेकी ओर वह पाखाना है। और प्रत्येक घरका अलग-अलग पाखाना है, जिसमें नल लगा हुआ है। पाखाना हो लेनेपर नल घुमा देनेसे पानीकी बड़ी तेज धारा आती है, जो मलको नलोंके द्वारा बहा ले जाती है। पीछे यह भी मालूम हुआ कि पाखानोंपर भंगी नहीं रखे हुए हैं। भंगी तो अब कोई जाति ही नहीं है। हाँ, नल बिगड़ जानेपर कोई भी आदमी, जो नलोंके सुधारनेपर नियुक्त है, उसे ठीककर देता है। सारे गाँवका मैला बड़े-बड़े नलों द्वारा दो-तीन कोसकी दूरीपर जाता है। वहाँपर बड़े-बड़े गड्ढे, कलों-द्वारा खोदे हुए तैयार रहते हैं। मिट्टी नीचे भी खुदी, और बाकी आस-पास लगी रहती है। इधर मैला गिरता जाता है, और उधर मशीन उसपर मिट्टी फेंकती जाती है। मशीनें बिजलीके जोरसे चलती हैं और चलानेवाले भी दूर रहते हैं। यद्यपि मिट्टीसे ढँके रखने तथा खुली हवामें मैलेका सम्पर्क न होनेसे वहाँ दुर्गन्ध नहीं मालूम होती, तो भी संचालक लोग मशीनोंके बिगड़ जानेपर वहाँ जाते हैं। एक गड्ढेके भर आनेपर पहलेसे दूसरा गड्ढा तैयार रहता है। इसी तरह एक भरा गड्ढा चार वर्ष तक बन्द छोड़ दिया जाता है। पीछे खोदकर उसमें और कुछ रासायनिक पदार्थ मिलाकर वह वृक्षोंमें खादकी भाँति उपयुक्त होता है।

मैं अपने बिस्तरसे झट उठ खड़ा हुआ। पहले शौच गया। पाखाना स्वच्छ था—वह पाखाने-सा मालूम ही नहीं होता था। अभी मैं मकानकी पिछली ओर नहीं गया था। देखा, घरसे दस-दस हाथ तक भूमिमें वैसे ही फूल, बेल-बूटे लगे हुए हैं, जैसे कि सामनेकी ओर। 'अतिथि-विश्राम' की सम्पूर्ण श्रेणीके आगे-पीछे, एक पार्क-सी लगी यह फुलवारी बड़ी सुन्दर मालूम होती है। मैंने पीछे देखा, सभी श्रेणियोंका प्रबन्ध ऐसा ही है। अपने घरोंके आमने-सामने फुलवारियोंको ठीक रखना, अपने-अपने घरोंको स्वच्छ-शुद्ध रखना घरवालोंका अपना काम है। मैं शौचसे आकर स्नानके कमरेमें गया। जाकर देखा, ठण्डे और गर्म जलके दो नल लगे हुए हैं। सफेद दूधकी भाँति चीनी-मिट्टी का पत्थर-सा मजबूत दो

हाथ लम्बा, डेढ़ हाथ चौड़ा, दो हाथ गहरा स्नान-पात्र क्या एक कुण्ड ही जमीनमें मढ़ा हुआ है। नलकी बगलमें दीवारसे लगे एक स्थान पर साबुनकी टिकिया तथा उससे ऊपर खूंटियोंपर एक सफेद तौलिया और एक धुली हुई लुन्गी रखी है। गर्म पानीका नल खुला हुआ है और हौज लबालब भरा हुआ है, तो भी पानी ऊपरसे नहीं निकलता है। मैंने हाथ-पाँव धोया। विचार किया कि अब दतुवन करना चाहिये। दतुवन तो दीख नहीं पड़ी, हाँ, साबुनकी टिकियाके पासमें एक चाँदीकी डिब्बीपर एक दाँतका ब्रश देखा। खोलनेपर डिब्बीके अन्दर सुगन्धित दाँतकी लेई मिली। मैंने विचारा, मालूम होता है, अब दतुवनका रिवाज ही नही रहा। पीछें विश्वामित्रने बताया, एक ही सेबग्रामके लिए पाँच हजार दतुवन चाहिये। अब फजूलके पेड़ तो यहाँ हैं नहीं। अच्छे पेड़ोंसे दतुवन तोड़ी जाने लगें, तो नित्य ही एक-दो पेड़ सिर्फ एक गाँवके लिए खराब हो जायें। फिर भूमण्डलकी जनसंख्या तो डेढ़ अरब है। इसीलिये ब्रश और मन्जनका प्रबन्ध किया गया है। अनार, बादाम आदिके छिलकोंको क्या हम लोग बेकार जाने देते हैं ? सबसे मन्जन या कोई-न कोई और कामकी वस्तु बनाई जाती है ।

मैंने ब्रश और लेईसे दाँत-मुँह साफ किया और कुण्डमें प्रविष्ट होकर साबुनसे मल-मलकर खूब नहाया। इस प्रकार नहा-धो, कपड़े बदलनेपर देवने आकर एक कल घुमाई और स्नान-पात्रका सब जल निकल गया। उसी कमरेमें एक ओर खिड़कीके पास एक ऊँचे स्थान पर स्वच्छ आसन बिछा हुआ था। मैंने वहाँ जाकर कुछ व्यायाम किया। इसके बाद बैठनेके कमरेमें आया। अब सूर्यकी रक्तिमा प्राची दिशामें फैली हुई थी। सूर्य-बिम्बकी एक पतली सुनहली रेखा ही अभी दिखाई पड़ती थी। जगह-जगह पक्षियों का मधुर कलरव अब भी जारी था। हवाके झोंके सामनेके फूलोंको हिला रहे थे। सड़क और सामनेके घरोंकी शोभा और स्वच्छता बिखरी हुई थी। मेरा भी चित्त अत्यन्त शान्त और प्रसन्न था।

इसी समय विश्वामित्र भी आ गये। उनके साथ पद्मावती भी थीं। मेरे कहनेपर वे दोनों भी पास ही रखी कुर्सियोंपर बैठ गये। यद्यपि चेहरा छोड़ सभी का सारा शरीर ढँका हुआ था; तो भी गर्म मकान में सर्दी कहाँ थी ? सहस्त्रों वर्णनीय बातें हैं। सबका वर्णन कैसे हो सकता है ? पुरुषों और स्त्रियोंकी पोशाक देखनेमें यही नहीं कि बड़ी सुन्दर थी, बल्कि उसमें कोई वस्तु व्यर्थ, अनुपयोगी और हानिकारक भी न थी। मैंने कामके समय तो पुरुष-स्त्रियों दोनोंको ऊनी जाँघिया, नीचे लम्बा मोजा और सारा पैर ढँके हुए एक प्रकारका जूता पहने हुए देखा। मैंने आश्चर्य से देखा कि वहाँ चमड़ेकी कोई-चीज न थी। जूते भी थे एक तरहकी मोटी जीनके (जो देखनेमें चमड़े-सी मालूम होती थी) और जिनके तल्ले दृढ़ रबरके थे। कुर्तोंके नीचे एक गर्म कोट और सबके सर पर एक ही प्रकारकी टोपियाँ थीं, किन्तु मालूम होता है, यह पोशाक कामके वक्तकी थी, क्योंकि रातको भोजनके समय तथा संस्था-गारमें वह पोशाक न थी। सबके सिर पर एक प्रकारकी गोली टोपी, पैरों तक लम्बे गर्म कोट और नीचे पतलून थी।

स्त्रियोंके पहनावे, जूता, मोजा, साड़ी और कुर्ती हैं। अधिक सर्दी पड़नेपर वे एक लम्बा गर्म कोट भी पहनती हैं, तथा सिरपर टोपी भी लगाती हैं। स्त्री या पुरुष कोई किसी प्रकारका भी जेवर नहीं पहनता। कलाई या पाकेट की घड़ियोंका भी चलन नहीं। निर्बल दृष्टिवाले जिन्हें उसकी आवश्यकता है, चश्मा भी लगाते हैं। हर एक व्यक्तिके पास एक-एक फौन्टेन-पेन और एक-एक रोजनामचा भी देखा। कलका वृत्तान्त लिखनेकी जब मेरी इच्छा हुई, तो मुझे भी एक बड़ा रोजनामचा, और एक फौन्टेन-पेन मिली। निब प्रायः बिलकुल ही सोनेकी थी, शायद कड़ाईके लिहाजसे कुछ इरिडियम नोकपर लगाई गई हो। क्लिप भी सोनेकी है ? पौंड और मुहर तो चलते ही नहीं ? न लोग आभूषण पहनते हैं, न गाड़कर रखनेही का काम है। अतः इन्हीं सब चीजोंमें उसका उपयोग होता है।

विश्वामित्र और पद्मावतीके आनेके थोड़ी ही देर बाद इस्माइल भी अपनी साथिन प्रियम्वदाके साथ आ पहुँचे और कहा, अब सात बजने ही वाला है, आज जलपानके बाद 'शिशु-उद्यान' देखना अच्छा होगा। प्रियम्वदा वहाँकी सहायक अधिष्ठात्री हैं। अभी यह मुख्याधिष्ठात्री साथिन फातिमाको इस बातकी सूचना भी दे आई हैं। मैंने भी कहा, "बहुत अच्छा, इस समय 'शिशु-उद्यान' देखा जाय, और दोपहरके बाद चिकित्सालय।" इसी बीच गोले की आवाज आई और हम लोग भोजनागारकी ओर चले!

सड़ककी दोनों ओर आस-पासके मकानोंकी शोभा और ही थी। सब मकानोंकी बनावटमें दृढ़ता, स्वच्छता और सुन्दरताका पूरा-पूरा ध्यान रक्खा गया है। पूर्ववत् ही हम लोग हाथ-मुंह धो कुर्सियोंपर बैठे जलपानके लिए एक-एक जलेबी, दो-दो अंडे और एक-एक गुलाबजामुन एक तश्तरीमें रखे थे। दूसरी तश्तरीमें ताजे तथा सूखे कुछ फलोंके कतरे और एक गिलास साफ जलके अतिरिक्त एक गिलास खाली भी रखा था, जिसमें पीछेसे गर्म दूध दिया गया। पूर्ववत् घण्टीपर खाना आरम्भ हुआ। अब हम लोग—विश्वामित्र, इस्माइल, प्रियम्वदा और मैं—वहाँसे शिशु-उद्यानकी ओर चले। मालूम हुआ कि शिशु-उद्यान गाँवके अन्तमें है।

रास्तेमें पूछनेपर विश्वामित्रजीने कहा—"पानही का नहीं, अब बहुत-सी चीजोंका रिवाज उठ गया है। तम्बाकू, खाना-पीना, बीड़ी-सिगरेट, शराब-गांजा, भंग-अफीम किसीका अब पता नहीं। बात यह है कि जो नशीली चीजें हैं, वे तो हैं ही वर्जनीय। उनका रोकना तो उनकी हानिकारिताके कारण ही आवश्यक था; किन्तु जो अनावश्यक है, उन्हें भी राष्ट्रने बन्द कर दिया। कोई चीज एक आदमीके लिए बिना विशेष स्वास्थ्यादि हेतुके तो दी नहीं जा सकती। सबके लिए नियम एक होना चाहिए। जिस तरह आवश्यक कपड़े साल भरमें एक आदमी को मिलते हैं, सारे राष्ट्रमें उसी तरह ही प्रत्येकको मिलते हैं। यदि पानका प्रबन्ध

किया जाय, तो सारे राष्ट्रके लिए प्रबन्ध करना होगा। भारतमें ३५ करोड़ आदमी रहते हैं। आप विचार कर सकते हैं कि इतने आदमियोंके लिए पान, छाली, चूना, कत्था, तैयार करनेमें लाखों आदमियोंको लगा रहना पड़ेगा। इतनी फजूलखर्ची करना आज राष्ट्र कैसे गँवारा कर सकता है? जो लाखों बीघे खेत पान, तम्बाकू पैदा करनेमें फँसे रहते, आज उनमें अन्य उपयोगी पदार्थ उत्पन्न किये जाते हैं।"

मैंने कहा—"तुम्हारी आजकी राष्ट्रीय प्रगतिने तो सारे ही दुर्व्यसनोंके लिए ही पर्याप्त कुल्हाड़ी ढूंढ़ निकाली है।" फिर मैंने पूछा—"अब हिन्दू-मुसलमान, पारसी, ईसाईके पृथक् भोज आदिका झगड़ा तो रहा नहीं, किन्तु मांस खाने वालोंका कैसे निपटारा होता होगा?" इसपर विश्वामित्रने कहा—"अब असली मांस मिलता ही नहीं। नकली मांस जितना चाहें उतना मौजूद है।"

"और अंडा?"

"वह तो परम सात्विक फलाहार है।"

"अब क्या यूरोप-अमेरिकामें सुअर आदि नहीं पाले जाते होंगे?"

"नहीं, बिल्कुल नहीं। बस्तीमें यहीं न देखिये, कहीं कोई जानवर है? पहले जैसे मैंने बन्दरोंके बारेमें बताया था, उसी जाति-उन्मूलन-प्रक्रियासे सूअर, कुत्ता, बिल्ली सबका जाति-उन्मूलन हो गया है। केवल प्राणि-विद्याके विद्यार्थियोंके उपयोगके लिये कहीं-कहीं उन्हें पालकर रखा गया है।"

"चमड़ेका तुम लोगोंने तो व्यवहार छोड़ दिया, इसलिए मांस छोड़ने से उधर तकलीफ नहीं उठानी पड़ती होगी; किन्तु इतना जो दूधका खर्च है, उसके लिये गायें तो बहुत पालनी पड़ती होंगी? खैर, मारनेसे नहीं, तो अपनी मौतसे तो उनमें हजारों मरती होंगी? उनका चमड़ा भी क्या मशीनोंके 'बेल्ट' के लिए काममें नहीं लाया जाता?"

"मशीनोंकी बेल्ट भी चमड़ेसे कहीं मजबूत कानविसकी बनती हैं।

चमड़ेको अलग करना, उनको सिझाना इत्यादि बड़ा गन्दा काम था। जिससे वायु बहुत दूषित हो जाती थी। अतः वह काम भी एकदम छोड़ दिया गया। पशुके मरने पर उसे खोदकर गाड़ दिया जाता है। पीछे खाद हो जाने पर उसे व्यवहारमें लाया जाता है। ऐसे बेकार तो जहाँ तक हो सकता है, कोई भी चीज जाने नहीं पाती। हड्डियोंका हम लोग पूरा उपयोग लेते हैं, गोबर आदि भी खादके लिए उपयुक्त होते हैं।"

हम लोग बातें करते जा रहे थे। रास्तेमें मिलनेवाले सभी नर-नारी, मेरी ओर देखते चले जाते थे। ग्राम, पहाड़के नीचे और नदीके किनारे होनेसे लम्बाईमें अधिक है। चौड़ाईमें तो पाँच सड़कें ही हैं। सड़कें अच्छी चौड़ी हैं; जिनके दोनों ओर घने वृक्ष लगे हुए हैं। प्रत्येक सड़कके दोनों ओर गृह-श्रेणियाँ हैं। प्रत्येक श्रेणीका पिछला भाग अगली श्रेणीके पिछले भागसे मिला है, अर्थात् दोनोंके बाग एकही में जुड़े हैं। इस प्रकार चौड़ाई में छः श्रेणियाँ हैं। ग्रामकी लम्बाई पूर्व-पश्चिम है। एक श्रेणीकी समाप्ति पर उत्तर-दक्खिन जानेवाली एक-एक सड़क है। यदि कोई आदमी ग्रामणी कार्यालयसे चले, तो एक चौराहेपर अतिथि-विश्राम श्रेणी मिलेगी। इसके बाद साधारण श्रेणियाँ हैं। तीन चौराहे पार कर चौथेपर 'संस्थागार' पड़ेगा, जो दो श्रेणियों के बराबर जगह घेरता है। यहीं ग्राम-पुस्तकालय में लगा हुआ एक बड़ा हाल है। यहाँसे आवश्यकता-नुसार पुस्तकें श्रेणी-पुस्तकालयमें भी आती-जाती रहती हैं। 'संस्थागार' और भोजनागारमें एक ही सड़कका अन्तर है। गाँवके नये और बड़े-बड़े सिलाई आदिके काम तो दर्जी-ग्रामों आदिसे बन कर आते हैं, किन्तु फिर भी कोई बीचमें मरम्मत या जल्दीके कामके लिए ग्रामणी-कार्यालयके सामने सीने, रंगने, बिजलीके शीशोंके रखने-बदलने आदिका काम होता है। उसके उत्तर की ओर उससे ही लगा हुआ धोबीखाना है, जहाँ मशीनके द्वारा कपड़ोंकी धुलाई, कलप आदि होती है। कपड़ोंके सुखाने के लिए यहीं बड़े-बड़े गर्म हाल हैं। उससे एक सड़क लाँघकर भोजनकी वस्तुओंका गोदाम है। उसीसे लगी मोटरोंके ठहरनेकी जगह

तथा अन्य वस्तुओंका गोदाम है। अंतमें सामान मरम्मतके कामके लिए मिस्त्रीखाना है, जहाँ लोहार-बढ़ईका भी काम होता है। इन सभी जगहों पर मरम्मतका वही काम होता है, जिसकी जल्दी रहती है। नहीं तो वे चीजें उन ग्रामोंको भेज दी जाती हैं, जहाँ केवल उन्हींका काम होता है। इस प्रकार मालूम हो सकता है कि ग्रामके सभी कार्यालय पश्चिम और उत्तर-दक्खिनकी सड़क पर पड़ते हैं। संस्थागार, भोजनागार बीचमें, और शिशु-उद्यान तथा चिकित्सालय ग्रामसे बाहर पूर्व तरफ हैं। लम्बाईकी सड़कें अधिक चौड़ी हैं तथा उनपर छायादार वृक्ष लगे हुए हैं।

इच्छा हुई, पहले शिशु-उद्यान देखूं, पर भोजनका समय हो गया था, इसलिए भोजनागारकी ओर मुड़ा। जब भोजनागार बीस गज रह गया, तभी ग्यारहका गोला दगा। सब लोग पुनः पूर्ववत् हाथ-मुँह धो भोजनके लिए बैठ गये। इस वक्तका भोजन वही था, जिसे पहले समय में लोग कच्चा भोजन कहा करते थे। रोटी, दाल, मांस, साग, कढ़ी, पकौड़ी सभी चीजें परोसी गई थीं। मेरी दाहिनी ओर विश्वामित्र और बाईं ओर इस्माइल बैठे थे। हम लोग जरा पहले गये थे, इस लिए एक दो मिनट अभी देर थी। मैंने कहा, इतनेमें पाकशाला ही देख आयें। भोजनागारके दक्षिण तरफ पाकशाला थी। जाकर देखा; सभी चीजोंके बनानेके लिए बड़े-बड़े बर्तन हैं, जिन्हें उतारने-चढ़ानेका काम मशीनों ही से लिया जाता है। आटा गूँधना, रोटी बनाना मशीनों द्वारा ही होता है। आगका काम बिजली देती है। इतनी बड़ी पाकशाला, जिसमें पाँच हजार आदमियोंका भोजन बनता है, किन्तु कहीं कालिख नहीं, धुआँ नहीं। हर एक वस्तुके डालने और उतारनेका भी समय है। आँचका भी माप है। अतः किसी वस्तु में गड़बड़ी होनेकी गुंजाइश नहीं। यद्यपि सभी वस्तुयें स्वच्छ, शुद्ध ही आती हैं; तब भी भोजनके गुण-अवगुणके विशेषज्ञ जब तक किसी वस्तुके लिए अनुमति नहीं दे देते, तब तक वह नहीं बन सकती। यह पहले ही बतला चुके हैं कि असली मांस अब नहीं मिलता; किन्तु कई ऐसे पदार्थ रासायनिक योगसे तैयार किये

गये हैं, जिनमें स्वाद भिन्न-भिन्न मांसोंका आता है, और गुण भी वही। पाकशालामें पुरुष और स्त्री दोनों ही भाँतिके पाचक हैं। परोसकर थालियों-कटोरियोंको लकड़ीके तख्तोंपर सजाया जाता है, जिनके पूरा हो जानेपर भोजनागारमें बिजलीहीसे घुमाया जाता है। ऊपरसे दो-तीन आदमी उतार-उतारकर मेजोंपर रखते जाते हैं। भोजन समाप्त होनेपर फिर उसी भाँति उन्हीं तख्तोंपर थालियाँ और दूसरे बर्तन रखकर धोनेके कमरेमें पहुंचाये जाते हैं, जहाँ गर्म जल और शोधक पदार्थ द्वारा मशीन हीसे उनको माँजा जाता है। बचा हुआ जूठा भोजन मोटरपर लादकर बाहर एक जगह गाड़ दिया जाता है, जिसकी खाद बनती है, किन्तु बहुधा लोग उतना ही ले लेते हैं, जिसमें अधिक जूठा न छूटने पाये।

घण्टी बजनेसे पूर्व ही हमलोग अपने आसनपर बैठ गये थे। पीछे प्रेमपूर्वक खूब भोजन हुआ। मुंह-हाथ धोकर जब हम लोग चिकित्सालय की ओर चले, तो हमारे साथ देवमित्र भी थे। हम लोग चिकित्सालय पहुँचे। साथिन मनोरमा तथा उनके अन्य सहायकोंने द्वारही पर हमारा स्वागत किया। एक सहायक चिकित्सकको छोड़कर चिकित्सालयके सभी कार्यकर्त्ता महिलायें ही थीं। सहायक चिकित्सक कोई दूसरे नही, मनोरमाके पति श्री रहीमबख्श थे। दोनों ही दम्पतिने तक्षशिलामें चिकित्सा का पूरा अध्ययन किया था। जन्म आप लोगोंका कश्मीरका है। मैंने समझा था, पाँच [illegible] जब आबादी है, तो रोगी भी उसीके अनुपातसे होंगे, किन्तु यहाँ पर कुल ५० रोगी दिखाई पड़े। मालूम हुआ कि अधिक-से-अधिक एक बारमें सौ तक बीमारोंकी संख्या पहुँची थी। कोढ़, बवासीर, उपदंश, राजयक्ष्मा, मृगी, दमा आदि रोगोंका जब संसार से ही नाम उठ गया, तो वे यहाँ कहाँ से मिलें? मामूली ज्वर, सिरदर्द, अजीर्ण, कोई चोट-फाट यही साधारणतया रोग होते हैं। मनोरमा ने कहा—"अब चिकित्साशास्त्रकी बहुत-सी पढ़ाई सिर्फ पढ़नेहीके लिए होती है; औषधि-चिकित्साका तो यह हाल है ही, शल्य-चिकित्साकी और भी कम आवश्यकता पड़ती है; आजसे दो शताब्दियों पूर्वके

चिकित्सकोंको ही इसका बहुत प्रयोग करनेका अवसर मिलता था; तरह-तरहकी नई बीमारियाँ, राजरोग, युद्ध आदि कितने कारण थे, जो सदा उनके पास रोगियोंकी भीड़ लगाये रखते थे। मैं इसके लिए अफसोस नहीं करती; यदि कभी ऐसा दिन आवे, कि कोई रोग ही न हो तो कैसा अच्छा होगा? कालान्तरमें चिकित्साशास्त्रका प्रचार भी गुप्त हो जाय, तो भी कोई चिन्ताकी बात नहीं; किन्तु हाँ, यदि एक ओर रोगियोंकी चिकित्साका काम कम पड़ा है, तो दूसरी ओर स्वास्थ्य-विषयक अनेक नियमोंके प्रचारके लिए पूरा समय मिला है। भोजन-आच्छादन, रहन-सहन, सभीमें स्वास्थ्यदायक और पोषक गुणोंका अधिक समावेश होनेका प्रयत्न करना अब चिकित्सकका आवश्यक कर्त्तव्य हो गया है।"

रहीम और मनोरमाने चिकित्सालयके सभी स्थानोंको भली प्रकार दिखाया। रोगियोके रहने, खाने-पीनेके प्रबन्धके विषयमें क्या कहना है? चारों ओर स्वच्छता-ही-स्वच्छताका साम्राज्य था। रोगी-सुश्रूषक महिलाएँ रोगकी आधी पीड़ाको अपने सहानुभूतिपूर्ण मधुर वचन और सरस बर्तावसे दूर कर देती हैं। औषधियोंका कोष बहुत भारी है। उपयोगी हथियार और यंत्र भी पर्याप्त रखे हुए हैं। चिकित्सालयकी पाकशाला आदि सभीका निरीक्षण करके अब हम लोग वहाँसे विश्राम-स्थानको लौटे। मैंने विचार किया, कल और आजकी बहुत बातें मुझे रोजनामचेमें भी लिखनी हैं। अभी एक बजा है, तब तक यह काम करूँगा। शामको आनेके लिए कहकर इस्माइल और प्रियंवदा तो चली गईं, किन्तु देव विश्राम-स्थानपर पहुँचाकर लौटे। मैंने विश्वामित्रसे रोजनामचा लिखनेकी बात कही। वह भी अपने कमरेमें चले गये। मैं अकेला कलम निकालकर लिखने बैठा। लिखने योग्य बातोंका तो ठिकाना नहीं था, किन्तु मेरे पास समय और स्थानका संकोच था। मैंने, जहाँ तक हो सका, मुख्य-मुख्य अंशोंको ही संक्षेपमें लिखना निश्चित किया। कोई प्रधान बात कहीं छूट न जाय, इसलिए मैंने निश्चित किया कि दिन भरके लेखनीय विषयको रात्रिमें सोनेके पहले अवश्य लिख डालना चाहिये।

शिशु-संसार

दूसरे दिन हम शिशु-उद्यानकी ओर चले। पहले फाटक मिला। उद्यानको आप यह न समझें कि कोई चार-दिवारी या लोहेके सीकचोंसे घिरा बगीचा होगा। इसकी वहाँ कुछ आवश्यकता ही नहीं है। न पशु हैं, जो भीतर घुसकर नुकसान करेंगे और न कोई चीज चुरानेवाला। द्वार बड़ा सुन्दर और विशाल है; इसके ऊपर दो-महला मकान है। भीतर जाते ही साथिन फातिमा—जो हमारी प्रतीक्षा कर रही थीं—मिलीं। यद्यपि आपकी अवस्था अस्सी वर्षकी है, तब भी अपने कामको जवानोंकी भाँति करती हैं। आप २० वर्षसे विधवा हैं। शिक्षा समाप्तकर व्याह करनेके बाद आपके पति श्रीहृषीकेश द्विवेदी के यहाँ ही आकर बसे। दोनों ही दम्पत्ति तक्षशिलाके विद्यार्थी थे। पतिने चिकित्साका काम अपने ऊपर लिया था, और फातिमा दस वर्ष तक चिकित्सालयमें ही रोगी-परिचर्याका कर्तव्य करती थीं। आपका बालकोंसे अगाध प्रेम था, इसीलिए पीछे आप शिशु-उद्यानमे चली आई। तबसे आप इन स्वर्गीय पुष्पोंकी सुगन्ध का आनन्द ले रही हैं। नाम से आप यह न समझ जायें कि फातिमा मुसलमान हैं। मैं लिख ही चुका हूँ कि धर्म अब उठ गया है।

अब हम लाग आगे बढ़े। उद्यान बहुत ही विस्तृत और दूर तक फैला हुआ था। फूलोंमें शायद ही ऐसा कोई छूटा हो, जो वहाँ न हो। बेला, चमेली, नाना भाँतिके गुलाब, चम्पा, जूही, मोगरा, कुन्द और गेंदा सभी। उनमेंसे बहुत-से फूल हँस रहे थे, और बहुत-से चुपचाप हरी पोशाक पहने केवल तमाशा देख रहे थे। बीच-बीचमें कितने ही अनार, नारंगी, सेब, आम, जामुन, लीची, कटहल, बैर और अमरूद आदिके पेड़ भी थे। टट्टियोंपर अंगूरकी लता फैली हुई थीं। यहीं बीचमें एक बहुत भारी पीपलका वृक्ष है, जिसके नीचे लड़के गर्मियोंमें खेलते हैं।

यद्यपि धूप निकल आई थी, किन्तु अभी घासोंपर ओस पड़ी हुई थी, इसलिए लड़के उस बड़े पक्के चबूतरेपर थे, जोकि उनके शयनागारके सामने था। धूप वहाँ पहुँच चुकी थी। उनकी सुश्रूषा करनेवाली महिलायें, उन्हें बतला रही थीं कि आज एक बहुत बृद्ध महात्मा आने वाले हैं। कोई-कोई बड़ा बालक—किन्तु तीन वर्षसे अधिकका नहीं, क्योंकि तीन वर्षके बाद तो वे विद्यालयमें भेज दिये जाते हैं—पूछ उठता था—"अम्मा ! क्या वह महात्मा हमारी बड़ी अम्मासे भी बूढ़े हैं ?" तब वह बतलाती—"मेरे कलेजे ! तुम्हारी बड़ी अम्माका तो जन्म भी न हुआ था, जब वह महात्मा तुम्हारी अम्मासे भी बूढ़े हो गये थे।"

एक शिशु—"तो किसके बराबर हैं ? हमारे गाँवमें किसीको बताओ।"

माता—"मेरे बच्चे ! तुम्हारे गाँवमें क्या, पृथ्वी भरमें कोई उतना बूढ़ा नहीं।"

दूसरा—"अच्छा, इस पृथ्वीपर नहीं सही, मङ्गलकी पृथ्वीपर तो होगा, बुधकी पृथ्वीपर तो होगा ?"

माता—"कोई होगा, किन्तु उसको तुमने देखा तो नहीं ?"

दूसरा—"तो इसी पृथ्वीको कहाँ हमने सारा देख लिया ?"

माता—"मेरे प्यारे ! देख लोगे। अभी तो चलने लायक हुए हो, अभी तो बोलने लायक हुए हो। जब पृथ्वीका रास्ता, बोली-वाणी खूब सीख लोगे, तब सब देख लोगे।"

इतनेमें दूसरी महिलाने कहा—'अब काहे इतनी माथापच्ची करते हो विजय ? देखो, वह तुम्हारी बड़ी अम्माके बाईं ओर सफेद दाढ़ीवाले वही महात्मा आ रहे हैं। देखो, अपना-अपना सितार हाथमें ले लो; आज देखना है, बूढ़े बाबाको कौन अच्छा गाना सुनाता है ? मैं भी सुनाऊँगी, जानकी अम्मा भी सुनायेंगी, जैनब अम्मा भी सुनायेंगी।"

इतनेमें ध्रुव बोल उठा—"मैं भी सुनाऊँगी।" इसपर सब हँस पड़ीं। जानकीने कहा—"ध्रुव ! 'मैं भी सुनाऊँगी' नहीं, 'मैं भी सुनाऊँगा'

कहो।" ध्रुवने जानकीके पैरोंको कौलीमें भर मुँहको साड़ीमें छिपाकर कहा—"मैं भी सुनाऊँगा'।" इसपर रोहिणीने कहा—"और अम्मा, 'मैं भी सुनाऊँगा'।" जैनब ने कहा—"लो यह दूसरी आफत आई।" रोहिणी ढाई वर्षकी लड़की थी, जैनबने उसे गोदमें ले मुँह चूमकर कहा—"मेरी बिटिया! लड़कियाँ ऐसे नहीं बोला करतीं। कह, 'मैं भी सुनाऊँगी।"

रोहिणी ने कहा—"हूँ! ध्रुव भैया यही तो कहता था, तब जानकी अम्माने टोका।"

जैनब—"तू बेटी है न?"

रोहिणी—"हाँ, तेरी बेटी हूँ, जानकी अम्माकी बेटी हूँ, बड़ी अम्माकी बेटी हूँ कि? कमाल भैया की तो बहिन हूँ। शफ़ी भैया भी, देख, रोहिणी बहिन—रोहिणी बहिन कहता है। ध्रुव भैया भी बहिन कहता है। तो मैं खाली बेटी कैसे हूँ, बेटी भी हूँ, बहिन भी हूँ।"

जैनब—"अच्छा बूढ़ी दाई! तुम बेटी भी हो, बहिन भी हो, लेकिन बेटा और भैया तो नहीं हो?"

रोहिणी—"हाँ! नहीं हूँ।"

जैनब—"अच्छा! तो बेटा, भैया, 'सुनाऊँगा' कहे तो ठीक, और बेटी, बहिन 'सुनाऊँगी' कहें तो ठीक। इतना ही नहीं, बूढ़े बाबा, पिता, चाचा 'सुनाऊँगा' कहें तो ठीक और बूढ़ी अम्मा, छोटी अम्मा, बड़ी अम्मा सब 'सुनाऊँगी' कहे तो ठीक।"

इतनेमें हमलोग पहुँच गये और बात यहीं समाप्त हो गई। सब माताओंने अभिवादनके लिए पहले हाथ उठाया, जिसे देख बच्चोंमें भी छोटी गाड़ियोंमें रखे अत्यन्त छोटे बच्चोंको छोड़कर सबने हाथ उठाये।

मुझे वे बच्चे सचमुच खिले हुए स्वर्गीय फूल-से जान पड़े. उनके लाल लाल होंठ और गुलाबी गालोंपर अस्फुट हँसीकी रेखा थी। सबके शरीर पर एक प्रकारके गुलाबी रङ्गके फलालैनके कपड़े थे। सबके पैरोंमें छोटे छोटे मोजे और छोटे-छोटे सुन्दर जूते थे। सिर मुलायम टोपीसे ढँका

था। स्वागत समाप्त होनेके साथ ही मैंने देखा, बालक-बालिकायें सभी—जिनकी वहाँ पहचान होनी कठिन थी—अपने छोटे-छोटे तीन तारवाले खिलौनें-सितारको लेकर बैठ गये। कोई मिजराबको उल्टा पहनता और वह अंगुलीमें न जाती, तो पासके बड़े लड़केसे कहता—

'मोहन भैया! जल्दी इसे अँगुलीमें लगा दे तो।'

मुर्तुजाने एक बार कानके पास ले जाकर तारको मारा तो 'दिम' सी आवाज आई, बस क्या था। उसने समझा, मैं ही बाजी मार ले जाऊँगा। तुरन्त प्रसन्नतासे फूला हुआ प्रियंवदाके पास दौड़ा गया, हाथ पकड़कर थोड़ी दूर ले जाकर बोला—

"अम्मा! जरा गोदी तो ले।"

जब गोदी चढ़ गया, तो अपने बाजेको कानके पास ले जाकर एक बार तार पर मारा, किन्तु अबकी तार हाथसे दबा था, अतः आवाज नहीं हुई। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ, क्या उसकी आशा ही पर पानी फिर गया? तो भी कहा—"माँ! अभी नहीं न सुना; खडी रह, सुनाता हूँ न" प्रियंवदा तो अभिप्राय जान गई थी। उसने तार परसे अँगुली जरा खिसका दी। मुर्तुजाने अबकी मारा, तो 'दिम' में हुआ। बड़ा खुश होकर बोला—"देख! मै अच्छा बजाता हूँ न?' प्रियवदाने कहा—"हाँ बेटा! तू बड़ा अच्छा बजाता है। आज पितामहको सुना तो।"

इस पर मुर्तुजाने पूछा—"अम्मा! पितामह कौन हैं?" इसपर प्रियंवदाने बताया—वही बूढ़े-बूढ़े, सफेद दाढ़ीवाले। अब मुर्तुजाने एक बात चालाकीकी कही—"माँ! अब चुप-से बैठ जाता हूँ, नहीं तो विजय भैया कहेगा—अम्मासे सीख आया है।" यह कह मुर्तुजा जाकर एक जगह बैठकर खूब आलाप लेने-जैसी शकल करके कुछ गुनगुनाते सितार छेडने लगा। देखा-देखी और कई बच्चोंने भी ऐसा ही करना आरम्भ किया।

मैं गाडियोंपर बैठे बच्चोंकी ओर देखने लगा। कोई पासमे खड़ी माताकी अँगुली पी रहा है, कोई 'आगू-आगू' कर रहा है। कोई हँस-

कर अपनी नई सम्पत्ति दोनों अगली दंतुलियोंको दिखा रहा है। सभी बच्चे हृष्ट-पुष्ट और स्वस्थ थे। कोई दुबला; कुरूप और भोंदू न था। मैं एक छः-सात मासके बच्चेके पास गया, तो मेरे हाथ बढ़ाते ही वह हाथ बढ़ाकर मेरी ओर आनेकी इच्छा प्रकट करने लगा। फिर क्या था, उसको मेरी गोदमें देख बहुत-से बारी-बारीसे गोदमें चढ़े। सभी लड़कोंकी संख्या डेढ़ सौकी थी। देर होते देख मुर्तुजाने अबको प्रियंवदाके पास जाकर कहा—"माँ! अब सुनाऊं न—अब क्या देरी है?" इसपर प्रियवदाने कहा—"हाँ! रह जा; अभी बुलाकर पितामहको बैठाती हूँ, तब सुनाना।" सबको देखनेके बाद फातिमाने बैठनेके लिए कहा। लड़कोंहीमें हमारे बैठनेके लिए फर्शपर थोड़ी जगह मिली। हमारे बैठते ही सब बालक और करीब करीब हो गये। शिशु-उद्यानमें सब मिलकर तीस मातायें हैं। सभी अपनी-अपनी गोदमें तथा आसपास बच्चोंको लिये बैठ गईं। डेढ़ वर्षके ऊपरवाले लड़कोंने हाथमें सितार लिया था, और छोटोंमेंसे किसीने बिल्ली, किसीने कुत्ता, किसीने खरगोश, किसीने सीटी, किसीने गुड़िया, किसीने लकड़ीके अक्षरोंके कटे अंश, किसीने कोई खिलौना, किसीने कोई खिलौना। अब बड़ी अम्मा बोलीं—

"बच्चे साथियो! हमारे सबके पितामह यहाँ अपने बच्चोंको देखने आये हैं। अब उन्हें सब लोग अपना-अपना गुण दिखाओ। पितामह बाबा बहुत दिन पर आये हैं। पहले जानकी अम्मा भजन सुनावेंगी। जैनब अम्मा सुनायेंगी, तब देखो कौन सुनायेगा? विजय झट-से बोल उठा—"मैं।" मुर्तुजा पहलेसे हंस रहा था, किन्तु धोखेसे सुनायेंगी, हो सका, तो भी जल्दी-जल्दी उसने कह डाला 'मैं'। जानकीने हाथमें बीणा ले गीत गाया।

गानेका कहना ही क्या था? यद्यपि भाषा बालकोंकी थी, भाव भी बालकोंका था, किन्तु स्वर, लय, तान सबसे निराला था। बीच-बीच में मैं देखता था, कई एक बच्चे बड़े ध्यानसे सितारको हाथसे छेड़ते कुछ गुनगुनाते हुए तन्मय थे। अब जैनबने बीणाको हाथमें लिया। बिजय—

उसका शागिर्द—पास बैठा था। वैसे भी वह सावधान ही बैठा था, किन्तु अब विशेष तौरसे एक बार खड़ा हो आलथी-पालथी मार, ठीक जैनबकी तरह उसकी दाहिनी ओर बैठ गया। जैनबने मीठे स्वरमें एक गीत सुनाया।

गीत समाप्त होते ही ज्योंही जैनबने वीणा अलग रक्खी, विजय गोदमें जा बैठा और धीरे-से कानमें बोला—"माँ, वही उस दिन वाला गीत न सुनाऊँ?" जैनबने कहा—"कौन सा?" इसपर विजयने कुछ फुसफुसाया। जैनबने कहा—"हाँ बेटा, हाँ वही।" अब विजय धीरे-से मेरे पास आया, और बोला—"पितामह! अब एक गीत मैं सुनाऊँगा।" मुर्तुजाने कहा—"नहीं पितामह! पहले मैं सुनाऊँगा, तब विजय भैया सुनायेगा।" विजयने कहा—"नहीं पहले मैंने कहा था, पहले मैं सुनाऊँगा।" मुर्तुजाने फिर अपना पहला आग्रह दुहराया। अब बड़ी अम्माने झगड़ेका जल्दी निपटारा होते न देख, कहा—"अच्छा, दोनों भाई मेरे पास आओ।" दोनों दौड़कर फातिमाकी गोदमें चले गये। तब फातिमाने विजयसे पूछा—"उस दिन, विजय, जब तुम और शफी मेरे पास थे, मैं सेबका टुकड़ा तुझे जब देने लगी, तो तुमने क्यों लेनेसे इन्कार किया?" विजयको अम्माके हाथके फलसे इन्कारका शब्द कड़ा मालूम हुआ। झट गलेसे लिपटकर कहने लगा—"अम्मा! तू तो यों ही कहती है, इन्कार थोड़े ही किया? यही तो कहा था कि पहले शफीको दे, तो फिर मुझे दे।" फातिमाने पूछा—"अच्छा, ऐसा ही क्यों कहा?"

विजयने कहा—"तैंने ही नहीं बताया था, कि पहले छोटे भाईको देकर तब अपने खाओ। शफी छोटा भैया है, मैं बड़ा भैया हूँ, तो पहले कैसे खा जाता? प्रह्लाद भैया, इब्राहीम भैया, जमशेद भैया जब विद्यालय नहीं गये थे, तब मेरे या श्याम भैयाके बिना खाना कहाँ खाते थे?"

फातिमा ने कहा—"हाँ! मेरे लाल! ठीक तो कहता है। अच्छा तो मुर्तुजा छोटा भैया है, या बड़ा भैया?"

फातिमा—"तो फिर उसकी बात पहले हो कि तुम्हारी ?" विजयको अपनी गलती समझमें आ गई। उसने हँसते हुए कहा—"हाँ ! मुर्तुजा पहले तू गा, तब मैं गाऊँगा।" बड़े भैया छोटे भैयाकी बात होते देख अब मुर्तुजाके मनने भी पलटा खाया। उसने कहा—"विजय भैया बड़ा भैया है, पहले यह गा लेगा, तब मैं गाऊँगा।" विजयने कहा—"मुर्तुजा छोटा भैया है, पहले वह गायेगा तब मैं गाऊगा। "अब एक दूसरा अडङ्गा खड़ा देख, बड़ी अम्माने कहा—"मुर्तुजा ! बड़े भैयाकी बात छोटे भैयाको माननी चाहिये न ?"

मुर्तुजा—"हा अम्मा ! माननी चाहिये।"

फातिमा—"तब जैसा विजय भैया कहता है, वैसा करो। अब मुर्तुजा दौड़कर प्रियवदाके पास गया। और बोला—"अम्मा ! मेरे तारोको ठीक हो कर दो।" प्रियवंदाने लेकर जरा तारको इधर-उधर खींच दिया। अब मुर्तुजा दाहिने पैरसे पालथी मार और बायेंके सहारे सितार को हाथमे पकड़े, ऐसे बन बैठा; मानों तानसेन ही उतर आया हो। थोड़ी देर खीचने-खाँचनेके बाद बोला—"अभी गीत मैंने नहीं सीखा है, खाली बाजा सुनाऊँगा।' मैने और विश्वामित्रने कहा—"हाँ ! बाजा ही सुनाइये।" अब मुर्तुजाने एक बार अँगुली तारपर मारी, किन्तु वह तार-तक न पहुँचकर पहले ही रुक गई। बगलवाले लड़के हँसना ही चाहते थे कि उसने फिर एक बार खूब साधकर अँगुली मारी और अब 'दिम'-सी आवाज आई। प्रियवदा, फातिमा, मैंने और सभीने इसपर शाबाशी दी। मुर्तुजा बहुत प्रसन्न हुआ और बोला—"अच्छा, अब विजय भैयाका गीत हो " विजय जो अब तक बड़ी अम्माके पास बैठा था, उठकर जैनबके पास जाकर बोला—"माँ ! तू जरा बजा, तो मैं गाऊं।" विजयने एक-दो गीत खूब मेहनतसे याद किये थे। वह बहुधा जैनबकी गोदमें बैठकर उसके सितार बजानेपर गाया करता था। इसीलिए अबकी फिर उसने बजाने को कहा। जैनबके दान दिर करते ही विजयने अपना गाना आरम्भ किया······

शिशुके मधुर स्वर और अकृत्रिम कठसे निकले सरल गानेने प्राणों-को प्रफुल्लित कर दिया। बारी-बारीसे दो-चार और गवैयोंने अपने करतब दिखलाये। इसके बाद अक्षरके खिलाड़ियाका नम्बर आया। मरियम और रुक्मिणी सबसे पहले आईं। प्रियवदाने लड़कीके अक्षरोंके बाक्सको हाथमे लेकर उसमेंसे एक नीचे रखकर कहा—बूझो यह क्या है? रुक्मिणीके अभाग्यसे उसकी ओर अक्षरकी ऊपरी लकीर पड़ी थी, जिससे जब तक वा विचार करे त तक मरियमने बोल ि ा—'क'। अब क्या मरियमके आनन्दकी कोई सीमा न थी। प्रियंवदाने कहा—बेटी रुक्मिणी, कोई परवाह नही, आओ तुम दोनो एक सीधमे पाँमे खडी होकर अबकी बूझो। अबकी ि य े ,फर एक अक्षर फे । गिरनेके साथ दोनोंने एक साथ 'र' कहा व ी अम्माने दोनों को लगाया। अब बड़ी अम्मा सबके कुत्ते, बिल्ली बत्तख गुडिया आदि खिलौनोंको लेकर पाँती से रखकर कहने लगी—प्रियव्र,! खरगोश ले आओ तो। प्रियव्रतने झट खरगोश उठाकर हाथमें दे दिया। ऐसे ी ह एक-एक जानवरका नाम लेती जाती और ब चे ला लाकर देते जाते थ।

इसके बाद सारा समाज वहांसे उठ खड़ा हुआ। अत्यन्त छोटे बच्चे भी इस तमाशेमें शामिल थे। माता गोदमें उन्हे लिये थी। फूलोंके पास जाकर इसकी परीक्षा ली गई कि कौन कितने फल फूलोंका नाम जानता तथा पहचानता है। वहाँ मौलसि ी ि डालियोमे बहुत मे पालने लटक रहे थे; जिनके बारेमे बता । गया छो छोटे बच्चे इन्हीपर सोते और झूलते रहते है। पालनोंके गद्दे हुत ही मुलायम थे। एक कल सब झूलनोंको धीरे-धीरे झलाती रहती थी हम लोग यह ेख ही रहे थे कि इसी समय नौ का घंटा बजा अ ज घास र भ जनक प्रबन्ध था। इसी समय बाहरसे औ र्भा ब त सी स्त्रियाँ आतीं दीख पडी। ये लड़कोंकी जननियाँ थीं। वस्तुत यहाँ 'माता' शब्दसे उन सभी महिलाओंको ग्रहण किया जाता है, जो बालककी रक्षा शिक्षा-दीक्षाका प्रबन्ध करती हैं। सब प्रकारकी अनुकूलता देख छोटे-छोटे बच्चोंको भी

जननियाँ प्रायः शिशु-उद्यान ही में रख आती हैं। रात्रिमें वर्ष दिन तक के बच्चोंको जननी अपने पास रखती हैं। दिनमें नवजात शिशुओंवाली मातायें यदि काम करती हैं, तो ग्रामहीमें, सो भी दो घंटे; बाकी समय शिशु-उद्यानहीमें बालकोंका मन-बहलाव करती हैं। शिशु-उद्यान ग्राम-वासियोंका क्रीड़ोद्यान है, जहाँके पुष्पों और मनोरंजनकी और सामग्रियों में कोमल शिशु भी शामिल हैं। उनके मधुर आलापके सुनने, उनके मन-मोहक खेलोंको देखनेकी इच्छासे कितने ही नर-नारी अपने अवकाश-के समयको वहाँ व्यतीत करते हैं।

आजके राष्ट्रका ध्येय तो यद्यपि मनुष्य-मात्रके जीवनको आनन्दमय बनाना है, और ऐसा करनेमें उसे अच्छी सफलता भी हुई है; किन्तु बालकोंके लिए प्रस्तुत की गई सुखकी सामग्रियाँ तो पुराने सम्राटोंके राजकुमारोंको भी शायद नसीब न थी। साधारणतया बालकोंको थोड़ा-थोड़ा दिन-रातमें तीन-तीन घंटेपर सात बार जलपान और भोजन कराया जाता है। पहला कलेवा उनका ६ बजे होता है, जबकि दूधके साथ ऋतुके उपयोगी कुछ मिष्ठान्न दिये जाते हैं। इस वक्त नौ बजेके लिए खीर, कुछ फल ऐसे ही पदार्थ थे। बारह बजे भात-दाल, रोटी-तरकारीका प्रबन्ध रहता है। तीन बजे फिर फल, दूध। ६ बजे भी कुछ फल। ९ बजे नमकीन और मीठी चीजोंके साथ कुछ दूध भी और बारह बजे रातको फिर कुछ दूध और कुछ फल। भोजनका सिलसिला तीन-तीन घंटेपर बराबर रहता है। परन्तु तीन समय—प्रातः, मध्याह्न और रात्रिके नौ बजे—छोड़कर पेटभर नहीं खिलाया जाता। खाना हजम होनेके लिए लड़के दौड़-धूप किया करते हैं। आँख-मिचौनी आदि पुराने खेल-कूद भी खेले जाते हैं। छोटे-छोटे फुटबालोंको लेकर लड़के खूब खेलते हैं। हरी-हरी दूब पर इन छोटे-छोटे जवानों की कबड्डी भी बड़ी भली मालूम होती है। बागमें एक अखाड़ा भी इनके लोट-पोट और पहलवानीके लिए है। सारांश यह कि भोजन, वस्त्र, शिक्षा और शारीरिक श्रम सभी-पर पर्याप्त ध्यान दिया जाता है। हाँ! जो मातायें मैंने आते देखी थीं,

उन्होंने अपने नवजात शिशुओंको दूध पिलाना शुरू किया, और कितनी ही लड़कोंके पासमें खिलाने बैठ गईं। खाना खा सकने वाले लड़कोंकी मातायें अपने-पराये सभी बच्चोंको साथमें लेकर समान भावसे खिलाने लगती हैं। वास्तवमें इस समयके नर-नारियोंके हृदयसे संकीर्णता निकल गई है। उनके हृदय विशाल हैं।

जन्म देनेवाली माताओंहीके लिए नहीं, उन माताओंके लिए भी, जो कि उद्यानमें बालकोंकी रात-दिन सेवा-सुश्रूषा करती हैं, यह बहुत भारी मानसिक क्लेशकी बात है, कि तीन वर्ष बाद लड़के दूर-दूरके बड़े-बड़े विद्यालयोंमें भेज दिये जाते हैं। किन्तु राष्ट्रके कल्याणके लिए, और उन अपने बालकोंके हितके लिए वे सब सहन करती हैं।

भोजनके समाप्त होनेपर अब हम लोग कोठे परके वस्तु-सग्रहालयकी ओर चले। कुछ बालक तो स्वयं छोटी-छोटी सीढ़ियों-द्वारा चढ़ आये और कुछ को माताओंने ऊपर पहुँचाया। विजय सभी बालकोंमें होशियार था। उसका शरीर भी हृष्ट-पुष्ट था। वह जैनबकी अँगुली पकड़े हमारे साथ-साथ था।

संग्रहालयमें घुसते ही देखा, नीचे तरह-तरहके जीव-जन्तु, अन्न आदि वस्तुएँ रखी गयी हैं। धनुष, बाण, फरसा, गँड़ासा, लाठी, बन्दूक, तमंचा, भाला, कवच और खोद दीवारोंमें टँगे हैं। छोटी-छोटी तोपें भी रखी हैं। दीवारोंके ऊपर मनुष्य-जातिके बड़े-बड़े नेताओंकी जीवन-घटनाओं सम्बन्धी बड़े-बड़े चित्र हैं। कहीं सुकरात प्रसन्नतापूर्वक विषके प्यालेका पानकर रहे हैं। कहीं बुद्ध रक्तके प्यासे 'अँगुलि माल' के प्रहारका कुछ भी ख्याल न करके प्रसन्न बदन खड़े हैं। कहीं गांधी सड़कपर कंकड़ कूट रहे हैं। कहीं इब्राहम लिंकन विपरितियोंकी धमकीका कुछ भी ख्याल न करके मनुष्योंकी दासता हटानेके लिए बलिदान हो रहे हैं। कहीं जोन स्वतंत्रताके लिए निछावर हो रही है। कहीं अशोक युद्धके बाद साम्राज्य विरक्त हो रहे हैं। इसी तरहके अनेक प्रकारके चित्र हैं।

मुझसे यह भी कहा गया कि बालकोंको बोलते फिल्मों द्वारा भी बहुत सी ऐतिहासिक तथा वैज्ञानिक बातोका ज्ञान कराया जाता है। ग्रहोंका भ्रमण, रात-दिनका होना, चन्द्रमाका घटना-बढ़ना भी उसके द्वारा दिखाया जाता है। बालकोंको ये सारी शिक्षायें मनोरजन और खेलके रूपमें ही मिल जाती हैं। दूसरोंका काम जिज्ञासा उत्पन्न करनेकी सामग्री एकत्रित कर देना है। जब जिज्ञासा उत्पन्न हो जाती है, तो बालक अपनी जिज्ञासा पूर्तिके लिए सब कुछ सहन करनेको तैयार हो जाता है। तब हर एक बात उसे जल्दी स्मरण तथा हृदयगम भी होती जाती है। उस समय ज्ञानको घोलकर पिलाने या ठूँसनेकी आवश्यकता नहीं होती। मैने वस्तुओंको देखते समय बीच-बीचमें कभी-कभी किसी लड़केसे किसी वस्तुका नाम पूछा या नाम बोलकर वस्तु दिखानेको कहा तो बालक बड़ी प्रसन्नतापूर्वक सन्तोषजनक उत्तर देते थे। फानिमाने बताया—लड़के स्वय अँगुली पकड़कर माताओंको खींच लाते हैं। कभी किसी वस्तुका नाम पूछते है, कभी किसी चित्रको देखकर चित्रित घटनाकी कथा सुनने बैठ जाते है. कहने वालेसे अधिक उनको उन्हें देखने-सुननेमें आनन्द होता है। इसी समय यदि कभी भोजन का समय आ जाता है, तो बडी अरुचिपूर्वक वहाँसे भोजन करने उठते है। यद्यपि तीन वर्ष तक उनको कोई पुस्तक पढनेको नहीं दी जाती, न लिखाया ही जाता है, किन्तु ज्ञानके साथ-साथ उन्हे बहुत-सी सख्या तथा अक्षरो और अङ्कोंका बोध स्वय ही खेलते खेलते हो जाता है। ध्रुव, सप्तर्षि आदि तारोको वह पहचानने लगते है। वस्तुओकी सज्ञाका कोष उनका बड़ा हो जाता है। माता पिता, अभिभावक, और आस-पासके वायु-मण्डलको भी शुद्ध भाषाका प्रयोग करते देख उनकी भाषा बहुत शुद्ध होती है।

जब वहाँसे देखते हुए नीचे उतरे, तो बालकोंके शयनागारकी ओर चलने के लिए कहा गया। जाकर देखा—छोटे छोटे बालकोंके लिए जगह-जगह झूलने टँगे हुए हैं। बालकोंके सोने के लिए पलँगपर अच्छे-

अच्छे मुलायम गद्दे बिछे हुए हैं। सर्दीमे कमरेको गर्म करनेका पूरा प्रबन्ध है। रात्रिमें बालक बहुत कम यहाँ रह जाते हैं। अधिकतर अपनी जननियोंहीके पास सोते है। कुछ जो रहते हैं, वह अपनी उद्यानकी माताओंकी गोदमे सोते हैं। शयनागार की बगलमें भोजनागार है। बगलमें पाकशाला है, जहाँ बालकोंके लिए ताजा-ताजा भोजन बनता रहता है। अब ग्यारहका समय नजदीक आ रहा था, अत. उद्यानका और अवलोकन करना न हो सका। दूरसे छोटी छोटी छतरियोंके नीचे कुछ मूर्तियां-सी दिखाई पड़ी। पूछनेपर मालम हुआ कि वहाँ बालकोंके इष्टदेव ऐतिहासिक महापुरुषो की सगमरमर की मूर्तियाँ हैं, जहाँ पहुँचते ही बालक 'कथा', 'कथा की धुन लगा देते हैं। बिना उस महापुरुषकी एक-दो जीवन-घटना सुने, चैन नही लेने देते।

जानकीने घड़ी देखकर बतलाया कि अब ग्यारहमें पाँच मिनट बाकी हैं। हम लोग उद्यान-परिवारसे विदा हुए।

उस दिन उतना ही देखना था। दूसरे दिन अब यहाँसे नालन्दाको प्रस्थान करना था। विश्राम घर लौट आनेपर विश्वामित्रके साथ यात्राके समय तथा मार्ग आदिपर विचार हुआ। विश्वामित्रने पूछा—"क्या यहीसे सीधे नालन्दा चलना होगा ?"

"सीधे तो चलना होगा, किन्तु सीधे इसी अर्थमें कि रेलमें चढ़कर फिर बीचमें उतरना नही।

रेलसे चलनेमें समय कुछ अधिक लगेगा, यदि विमानसे चलना हो, तो आध घंटेका रास्ता है।'

' इतनी जल्दी चलना भी अभीष्ट नही है। रेलसे चलो, जिसमे भी जो ट्रेन सब स्थानोंपर खड़ी होती जाय उससे और जाना भी उस लाइनसे चाहिए जिसके द्वारा मैं आया गया हूँ क्योंकि मैं रास्तेके आस-पासकी बस्तियोंके परिवर्तन आदिको देख सकूँगा। अब इधर जल्दी तो आना नही है, इसलिए मेरी सलाह है कि यहाँ से रक्सौल,

सुगौली, मोतीहारी, मुजफ्फरपुर, पटना, बख्तियारपुर होते नालन्दा-चलें, किन्तु रास्तेमें कहीं विश्राम नहीं लेना है—केवल जहाँ गाड़ी बदले, वहाँ बदलने भरको उतरना है।"

"गाड़ी भी पटना में ही बदलेगी। बख्तियारपुर जानेका काम नहीं, पटनासे सीधी नालन्दाको लाइन गई है। रेलवे लाइनोंमें भी बड़ा परिवर्तन हुआ है। अब भारतमें क्या, पृथ्वी-भरकी लाइनें एक-सी ही चौड़ी हैं। वह चौड़ाई आपके समयके ई० आई० रेलवेसे कुछ कमकी है। इसलिए अब बी० एन० डब्ल्यू० रेलवेकी छोटी लाइन, और बख्तियारपुर बिहार वाला 'रेलका बच्चा' नहीं मिलेगा।"

"विश्वामित्र! 'रेलका बच्चा' तुमने कैसे जाना?"

"किताबोंमें देखनेसे।"

"किन्तु, इसके सम्बन्धकी कथा तुमको न मालूम होगी; सुनो! तुम तो इतिहासके पंडित ही हो। उस समयके लोगोमें मूर्खता बहुत थी। कितने गाँवोंमें कोई चिट्ठी आनेपर दूसरे गाँवमें बँचवानेको जाना पड़ता था। जब मर्द ही अक्षर-शून्य थे, तो स्त्रियोंके लिए क्या पूछना? कोई देहाती आदमी बख्तियारपुरकी उस समयकी बड़ी लाइनकी गाड़ीपर सवार था। उसने स्टेशनकी दूसरी ओर छोटे-छोटे रेलके डब्बे देखे, जो उसकी गाड़ीके सम्मुख वैसे ही थे, जैसे बापके सामने उसका छोटा बच्चा। उसने ऐसी छोटी रेलगाड़ी अब तक न देखी थी। अपने पासके किसी आदमी-से पूछा, जो स्वयं भी निरक्षर—किन्तु तर्ककुशल—था, कि यह क्या है? उसने कहा—'रेलका बच्चा'। पहले ने पूछा—क्या रेल भी बच्चा देती है? उसने कहा—देख ही रहे हो, हाथीका बच्चा हाथी नहीं देता है? उसने कहा—हाँ, सच कहते हो, बिलकुल शकल-सूरत भी मिलती है; खाली छुटाई-बड़ाई ही का तो फर्क है। अच्छा, तो बेचारा 'रेलका बच्चा' भी गया, उसके बोलनेवाले भी। पटना तक जब गाड़ी नहीं बदलेगी, तब तो गंगामें पुल बँध गया होगा।"

"१९५० हीमें।"

"अच्छा तो कल किस समय चलना चाहिये ?"

"कल साथी इस्माइलसे बात हुई थी। कहते थे कि मोहनपुर स्टेशन पर चढ़ना है, वहाँ वाले भी बहुत उत्सुक हैं। उनका आग्रह तो एक रात आतिथ्य करने का था, किन्तु आपकी दूसरी इच्छा देखकर उसमें बाधा नहीं डालना चाहते। कल जलपान के बाद यहाँ वालोंकी अन्तिम फूल-माला लेकर आठ बजे चलना चाहिये। साढ़े आठ बजे वहाँ पहुँच जायँगे। ग्यारह बजे मध्याह्न भोजन करके वहाँसे बारह बजे रेलपर सवार होना चाहिये।"

"ठीक है, यही प्रबन्ध करो।"

विश्वामित्रने इन बातोंको इस्माइलसे कहा और इसकी सूचना उसी दिन मोहनपुर तथा बीचके स्टेशनों एवं नालन्दाको भेज दी गई। रेलका समय देखकर ज्ञात हुआ कि गाड़ी सवारी-गाड़ी है, जो सब जगह ठहरती जाती है। हम लोग इस तरह चलकर परसों सबेरे साढ़े छः बजे नालन्दा पहुँच जायँगे।

रेलकी यात्रा

आज जलपान के पहले मेरे निवास-स्थानपर प्रियंवदा और इस्माइल के अतिरिक्त देवमित्र, आचार्य विश्वामित्र आदि अनेक व्यक्ति आ गये थे। हम लोग साथ ही भोजनागारको गये। संस्थागारमें गाँवकी ओरसे फूल-माला देकर मेरी विदाईका प्रबन्ध हुआ था। जलपानके बाद हमलोग संस्थागारमें पहुँचे। वहाँ सब लोगोंकी ओरसे देवमित्रजीने मेरे लिए प्रेमोद्‌गार प्रकट किये। साथ ही मुझे अष्टधातुके पत्रपर स्वर्णाक्षरों में मुद्रित एक काव्यमय अभिनन्दनपत्र दिया गया। कवयित्री वही प्रियं-वदा थीं। मैंने उत्तरमें ग्रामवासियोंके अकृत्रिम प्रेमके प्रति अपनी कृतज्ञता तथा संतोष प्रकट किया।

अब सबके अभिवादन और प्रेममयी दृष्टिसे आप्लावित हो सेबग्राम से मैं और विश्वामित्र विदा हुए। साथमें हमारी मोटरपर इस्माइल-दम्पत्ति, तथा देवमित्र भी चले। हमारे चलनेकी सूचना फोन द्वारा मोहन-पुर पहुँच गई थी।

गाँवके बाहर ग्रामणी तथा अन्य सभ्य स्त्री-पुरुषोंने पहले हमारा स्वागत किया, और कहा, सब ग्रामवासी संस्थागारमें प्रतीक्षा कर रहे हैं। हम लोग मोटरसे बिना उतरे सीधे संस्थागारमे पहुँचे। मकानोंकी सुन्दरता और ढंग बिल्कुल सेबग्राम ही सा था, बल्कि देखने वालेको एक ही ग्राम की भ्रान्ति हो सकती थी। विश्वामित्रने बतलाया, स्थानके सकोच, जनसंख्याकी कमी-बेसीसे गाँवकी लम्बाई-चौड़ाईमें भले ही फर्क पड़ सकता है, किन्तु श्रेणियाँ, सड़कें, संस्थागार आदि सबके नक्शे देशके सभी ग्रामोंमें एक-से होते हैं। जलवायुकी विशेषतासे भी कुछ आवश्यक परिवर्तन रखा जाता है।

मोहनपुरके विषयमें मालूम हुआ, यहाँकी जनसंख्या सेबग्रामके ही बराबर है। यहां बर्फ बनानेका एक कारखाना है और व्यवसाय आस-पासके १८-१५ फलवाले गावोंके फलोंको भिन्न-भिन्न जगहोंपर चालान करना है। इस पर्वतके फल लंका और बर्मा तक जाते हैं। इतनी दूर तक जानेमें कोई भी फर्क न पड़े, इसलिये उनके रखनेकी गाड़ियोंमे चारो ओर बर्फ रक्खी रहती है। फलोको ढोनेवाली मोटरोंपर फल रखने के लोहेके जालीदार बडे-बडे बर्तन रहते हैं। एक मोटरपर ऐसा एक ही बर्तन रहता है। फलोके बोझसे नीचेवाले फलोंको बचानेके लिये बीच बीचमे दूसरी जाली रहती है। मोटरगाड़ीके स्टेशनपर पहुँचते ही उठाने की कल द्वारा सारा बर्तन ही उठाकर रेलके डिब्बे में रख दिया जाता है। रेलका डिब्बा ऐसे नापका बना होता है कि पाँच मोटरोंके माल उसमे बिल्कुल ठीक अँट जाते है। फलोंकी गिनती देना बगीचों वालोका काम है। इस प्रकार कोलम्बो (लका)के लिये जाने वाला सेब एक ही गाड़ीमे मोहनपुरसे वहाँ पहुँच जाता है।

मोटरसे उतरकर संस्थागारके रंगमंचपर पहुँचनेपर मोहनपुरके नर-नारियोंने वैसा ही हार्दिक स्वागत किया, जैसेकि सेवग्राम वालोंने किया था। वहाँके ग्रामणीने भी मेरे विषयमें अपने सद्भाव ग्रामवासियोंकी ओर प्रकट किये। मैंने भी इसके लिये कृतज्ञता प्रकट की। इसके बाद फूल-माला दी गई। पीछे सबने भोजनका समय हो जाने से भोजनागार में जाकर भोजन किया। सब जगह प्रेम और आनन्द का स्रोत उमड़ रहा था। समय न होनेसे यहाँके और स्थानों को तो नहीं देख सका। संस्थागार और भोजनागार बिल्कुल वैसे ही थे, जैसे कि सेवग्राम के। पूछने से पता लगा कि शिशु-उद्यान, चिकित्सालय भी वैसे ही हैं। द्वार भी नदीकी ओर है और चिकित्सालयसे थोड़ा हटकर बर्फका कारखाना है। ये बातें स्टेशनको चलते समय मुझसे कही गई थीं। मैंने बार-बार उधर इस ख्यालसे देखाकि कारखानेकी चिमनी तो दिखाई देगी; किन्तु मुझे यह स्मरण नहीं था कि काम तो बिजली से होता है, फिर चिमनी का का क्या प्रयोजन—धुआँ-धक्कड़का काम ?

स्टेशनपर पहुँचे। पहले से ही मालूम था कि गाडीके आनेमें दो मिनटकी देरी है। अतः हम लोग थोड़ी देर अतिथि-विश्राममे बैठ गये थे, क्योंकि विश्वामित्रने बतलाया था कि अब न स्टेशनों पर पान-बीड़ी, सिगरेट और न मिठाइयों की दूकान, न 'कुली चाहिये', 'कुली चाहिये' का तूफान, न मुसाफिरखानोंकी 'भेड़िया-धसान' और भूखे-भिखमंगोंका 'जय जजमान है। मैंने पूछा—[illegible] और न सही, किन्तु मुसाफिरखानों के बिना तो मुसाफिरोंको अवश्य तकलीफ होती होगी ? इसपर विश्वामित्रने बताया तकलीफ काहे की ? ख्वामख्वाह तो कोई उतरता नहीं। जो वहाँ जाना होता है, वहाँ तो उतरता है। [illegible] भिखमंगोंका तो कोई बखेड़ा है ही नहीं। अभीष्ट ग्राम [illegible] अतिथि-विश्रामगृह [illegible] ही चलकर पहुँच गये। नहीं तो फोनसे [illegible] आती है।

आखिर गाड़ी भी आ गई। [illegible] बाद रेलकी सूरत देखी। लाइन तो वही लाइन थी [illegible] डिब्बे भी बहुत अच्छे सुन्दर रंगे

हुए थे। नई बात यह मालूम हुई कि इंजन दिखाई ही नहीं पड़ता था। न धुएँका फक-फक, न काली माई के रहनेका औंधा हौदा। इंजनके आगे का आकार हवाके धक्केको कम करनेके लिये नोकदार बना है, इंजनकी दूसरी पुरानी विशेषताएँ नहीं हैं। यह सब काया-पलट बिजलीके कारण हुई है। अब कोयला-पानीसे भाप बनानेकी तो आवश्यकता है नहीं। बिजली भीतर भरी रहती है। कुछ तो कोष बाहरसे लाकर रखा जाता है, और कुछ खुद रेलके पहियोंसे उत्पन्न बिजलीके सञ्चय करने से हस्तगत कर लिया जाता है। आजकलकी दुनिया अस्त्र-शस्त्रके तत्वोंपर बहस करनेमें जहाँ बालकी खाल उतारती है, वहाँ श्रम एवं वस्तुको जरा भी फजूल नहीं जाने देती। मजाल क्या कि एक टुकड़ा, सड़ा-गला लोहा, एक जरा-सा शीशीका फटा टुकड़ा, एक मामूली चीथड़ा, एक रद्दी कागजकी चिट व्यर्थ फेंक दी जाय। सभी चीजें गाँवके गोदाममें जमा होती रहती हैं, पीछे वहाँसे उनके उपयोग करनेवाले कारखानोंमें भेज दी जाती हैं। हाँ, तो रेलमें बाहरसे नाम-मात्र ही बिजली लेनी पड़ती है, और पहियों द्वारा उत्पन्न बिजलीसे ही गाड़ी चलाना, पंखा चलाना, रोशनी करना, भोजनकी गाड़ीमें रसोई बनाना, कमरे गर्म रखना, नहाने का पानी गर्म करना इत्यादि सब काम होते हैं। स्टेशनपर भी न टिकटोंकी हैं-हैं, पट-पट, न पुलिसकी फटकार। पुलिसके बारेमें तो इतना ही ज्ञात हुआ कि ग्राम-सभाके चुनावके साथ कुछ लोग इस कार्य के लिए चुन लिए जाते हैं। चोरी आदिका तो डर ही नहीं है। ऐसे तो शिक्षित समाज अकारण मार-पीट आदि पर उतर नहीं आता, किन्तु यदि कुछ हुआ या किसी अपराधीको पकड़ना, ले जाना हुआ, तो उस वक्त यह काम उन्हीं को करना पड़ता है। वस्तुतः उन्हें पुलिस न कहना चाहिये। इनके लिए प्रयुक्त होनेवाला 'सेवक' शब्द ही ठीक है; क्योंकि वे अत्यन्त विनीत और सेवामें तत्पर होते हैं। रेलोंमें चढ़नेके लिए टिकट की आवश्यकता न होनेसे 'टिकट बाबू' और 'टिकट-कलक्टरी' की आवश्यकता न रही। सब जगह सन्देश तारवाले टेलीफोन या बेतारवाले

टेलीफोन द्वारा भेजा जाता है। इसलिए 'टू-टक्' वाले बाबूका भी काम नहीं। समयपर लाइन साफ रखने तथा और प्रबन्ध करनेके लिए अन्य कर्मचारी होते हैं। किन्तु 'खालसी', 'पैंटमैन' और स्टेशन-मास्टर सब बराबर ही हैं—बल्कि सब एक दूसरेका काम भी कर सकते हैं। कारबार के लिए यह कहनेकी तो आवश्यकता नहीं कि सब कुछ 'भारती' भाषा ही से होता है। फलोंकी चालानका एक केन्द्र होनेसे यहाँ चढ़ाई-उतराई तथा ढोनेका काम बहुत होता है। इस मशीन-युगके यौवन कालमें सब काम उन मशीनों द्वारा ही कराये जाते हैं, जिनकी नसोंमें विद्युत्का संचार है। मनुष्य तो सिर्फ हुक्म देता है। सवारी-गाड़ीके खड़े होनेके 'प्लेट-फार्म' से कुछ दूरपर मालगोदाम है, जिसके पास ही पीछेकी ओर बर्फका कारखाना है। प्लेटफार्म बहुत सुन्दर, चिकना तथा आस-पास फूलोंसे सज्जित है।

स्टेशन-मास्टरसे भी परिचय हुआ। गाड़ीके आतेही हमलोग सवार हुए। न मेरे पास कोई बिस्तरा था, न विश्वामित्रके पास। और भी कितने ही आदमियोंको सवार होते देखा, किन्तु मानों सबने कुछ न ले चलनेकी कसम खा ली थी। सब लोगोके पास उतने ही कपड़े थे, जो उनके बदनपर—न बिछौना, न ओढ़ना, न ट्रंक, न लोटा-गिलास-थाली-तसला, न हुक्का चिलम, न तम्बाकू।

सचमुच 'सलाई टिकिया-दियासलाई', 'चाह गरम', 'कबाब रोटी', 'दाँतकी मिस्सी', 'सोडा-वाटर-बर्फ' आदि कोई भी पूर्व-परिचित शब्द मेरे कानों में न आये। गाड़ी क्या थी, छोटे-छोटे खिड़की-जंगलोंवाले जगमगाते मकान थे। फर्स्ट, सेकेण्ड, थर्ड क्लासका पता नहीं, बस, एक ही तरह की गाड़ी, एक ही तरह का बिछौना—चाहे इसे 'फर्स्ट क्लास' कहिए, या 'थर्ड'। चढ़नेके लिए द्वार दूर-दूरपर थे। हमलोग इंजनके पासहीके डिब्बेमें चढ़ गये। अब गाड़ीमें देर न होनेसे प्रियंवदा, इस्माइल, देवमित्र तथा मोहनपुरके सभ्य-जन विदा हुए। इंजन चलानेवाले महाशयको मेरे चढ़ने की खबर हो गई थी। उन्होंने घण्टी दे, गाड़ी

छोड़ दी। मैं गाड़ीमें खड़ा हो देखता हूँ, गाड़ीके एक ओरसे रास्ता गया है, और उसकी दूसरी ओर सोने लायक बेंचें हैं, जिनपर मुलायम गद्दे लगे हैं। मैंने विश्वामित्रसे कहा—पहले बुड्ढेको तुम्हारी नई दुनियाकी गाड़ी देख लेने दो। हमलोग इंजनके पाससे चले। जिस गाड़ीमें जाते, वहीं स्वागत होता। स्त्री-पुरुष सब अपनी-अपनी बेंचोंपर बैठे थे। कोई पुस्तक पढ़ रहा था; कोई आजका ताजा समाचार-पत्र। समाचार-पत्रोंकी धूम अब भी कम नहीं, किन्तु 'बंक' और 'कम्पनियों' का इश्तिहार नहीं। अफसोस, अब भी 'जो चाहो सो पूछ लो', 'त्रिकाल-दर्शी आईना', 'असली-मुमीरा', 'फायदा न करे तो दाम वापस', 'घर बैठे एक हजार रु० महीना कमा लो', मुफ्त ! मुफ्त ! मुफ्त, इत्यदि शब्दावलियों का पता नहीं। अखबारवालोंकी बड़ी-बड़ी व्यर्थकी सुर्खियाँ भी नहीं। न 'खास संवाददाता' अथवा 'रूटर द्वारा' का पता है। महत्वपूर्ण समाचारोंपर सुर्खियाँ अवश्य हैं, किन्तु अब बाहरी तड़क-भड़क दिखलाकर ग्राहक-संख्या तो बढ़ानी नहीं है। पत्रोंके कलेवर भी भारी ओढ़ने-पहनने लायक नहीं। विचारणीय विषय मासिक-पत्रोंमें जाते हैं। दैनिक-पत्र केवल संसारके दैनिक समाचारोंका संक्षेपमें संग्रह करते हैं। यह प्रत्येक प्रान्तके मुख्य स्थानसे उसीके नामसे निकलते हैं। शायद यह कहनेकी आवश्यकता न होगी कि वह आवश्यकता के अनुसार स्थान-स्थानपर उतनी संख्यामें भेजे जाते हैं, जिसमें कि प्रत्येक नर-नारी उन्हें आसानी से पढ़ सकें। कम हो जानेपर, कागजके कारखानों में जाकर ये पुराने अखबार सादे कागज बन, फिर दूसरी बार अपने कलेवर-को काला करानेको तैयार हो जाते हैं।

मासिक पत्र बड़ी तड़क-भड़कसे, चित्रोंसे सुसज्जित होते हैं। फोटो-ग्राफीका भी अब यौवन है। इतना ही नहीं कि इससे आकृतिके साथ जैसे-का-तैसा रंग ही उतरता है, बल्कि अब चित्र भी एक सेकण्डमें बेतार-के-तार द्वारा पृथ्वीके दूसरे छोर पर ज्यों-के-त्यों उतर कर समाचार-पत्रोंमें आ जाते हैं। मैं जिस दिन सेबग्रामके बागमें आया, उसी दिन मेरा

चित्र संसारके समाचार-पत्रोंमें मुद्रित हो गया। प्रत्येक साइंसके पृथक्-पृथक् मासिक पत्र निकलते हैं।

हम लोग कब रेलगाड़ीके पुस्तकालयमें पहुँच गये थे। यहाँ पत्रों और पत्रिकाओंका ढेर लगा हुआ था। यद्यपि दो-तीन आलमारियाँ पुस्तकोंकी भी थीं, किन्तु पत्र-पत्रिकायें ही अधिक। ज्योतिष, गणित, अध्यात्म, इतिहास, भाषा-विज्ञान, मनोविज्ञान, दर्शन, साहित्य, विद्युत्, कृषि, आयुर्वेद, वनस्पति, प्राणि आदि साइंसकी पृथ्वीके भिन्न-भिन्न छोरसे निकलनेवाली पत्रिकायें वहाँ मौजूद थीं। नर-नारी कहीं किसी दार्शनिक तत्व पर आलोचना कर रहे थे; कहीं नवीन समाचारको लेकर आनन्द या शोक प्रकट कर रहे थे, कहीं साहित्य-सिन्धुमें गोते लगा रहे थे, तो कहीं उपन्यास ही पढ़-सुन रहे थे,; और कहीं सङ्गीत मण्डली जमी हुई थी। पुस्तकालयकी गाड़ीके बाद भोजनालय है। यात्रियोंको घरकी तरह यहाँ बना-बनाया भोजन मिलता है। भोजनका समय यात्रामें भी वही है। घण्टा बजते ही लोग तैयार होकर बेंचों पर बैठ जाते हैं। भोजनालयसे लकड़ीके तख्तेपर भोजन की सामग्रियाँ परोसी बिजली के द्वारा सरकती हुई वहाँ पहुँच जाती हैं। भोजन खाने के बाद सब तख्ते बिजली द्वारा ही लौटा लिये जाते हैं। पानी पीने तथा नहानेके नल जगह-जगह लगे हुए हैं। पाखानोंका प्रबन्ध गाड़ीके अन्तमें है। ये भी बड़े साफ हैं; किन्तु पहलेकी रेलोंकी तरह जहाँ-तहाँ पाखाना गिर नहीं पड़ता, उसके जमा होनेका स्थान है और खास स्टेशनोंपर पाखानों को नालेमें गिरा दिया जाता है। शोधक तो जल-देवता हैं ही।

भोजनालयके कमरे को पारकर हमलोग आगे चले। कितनेही लोग बैठनेका आग्रह करते थे, किन्तु मैं यह कह देता था कि जरा आपके युगकी गाड़ी तो अच्छी तरह देख लूं। आगे चलकर एक गाड़ी बीमारोंकी थी। इसमें पाँच-छः बीमार बड़े आरामसे लिटाये गये थे। उनकी सेवामें दयामयी दाइयाँ तत्पर थीं। कोई किसीको पुस्तक पढ़कर सुना रही थी; कोई बातचीतसे मन-बहलाव करती थी। पासकी मेजपर गर्म रखनेवाले

बर्तनोंमें दूध और निकट ही सेब, अंगूर आदि ताजे-ताजे फल अच्छी तरह सजाकर रखे हुए थे। इन रोगियोंमेंसे दो तिब्बतसे आ रहे थे। चिर-रोगी होनेसे उनकी विशेष चिकित्साके लिए तक्षशिला ले जाया जा रहा था। तीन रोगी नेपालगणके भिन्न-भिन्न स्थानोंके थे। उन्हें वैद्योंने समुद्र-यात्राकी सम्मति दी थी। चिकित्सा और सुश्रूषाका समुचित प्रबन्ध होनेसे रोगी की आधी पीड़ा तो ऐसे ही भूल जाती है। भला यह आराम पहले जब बड़े-बड़े धनिकोंके लिए भी दुर्लभ था, तो सामन्य जनोंकी बात ही क्या ?

साथ गाड़ियोंकी एक बार सैर करके हमलोग एक स्थानपर आकर बैठे। उस समय मुझे ख्याल आया कि एक यह समय है और एक वह भी समय था, जब संसारमें सबसे कड़ी मेहनत कराने वालेको ही सबसे अधिक दुःख था। बेचारे परिश्रमी किसान-मजदूर रेलमें भी जब चढ़ते, तो उनके लिए खड़े होनेके लिए पर्याप्त स्थान न था। लोग एक-पर-एक भेड़ोंकी तरह जेठकी कड़ी गर्मीमें भी कस दिये जाते थे। उस भीड़ में कहीं बच्चा दबता रहता था, कहीं औरत। कुछ उज्र करनेपर कहा जाता— इतनी भीड़में जाते क्यों हो, दूसरी गाड़ीमें क्यों नहीं जाते ? किन्तु दूसरी गाड़ी आते तक तो किसीका मुकदमा बिगड़ता था, किसीकी लगन बीतती थी, किसीका बन्धु मरता था और किसीका खर्चा खतम होता था। और यह सब सह भी लें, तब भी कौन जानता है कि अगली गाड़ी खाली आयेगी, जिसमें टाँग-पसारे सोते जायँगे। यह बैठने-सोनेका आराम, यह पढ़ने-लिखनेका सुभीता, यह खाने-पीनेकी बेफिक्री पहले कहाँ नसीब थी। पैसेवालोंकी पाकेट भी तो चलते-चलते गायब हो जाती थी।

हमारे पासहीमें एक मध्यमवयस्का महिला बैठी हुई थी। पूछनेपर पता लगा, आप आन्ध्र-विश्वविद्यालयकी आचार्या हैं। आज छः मासके बाद एक बड़ी यात्रासे लौटी जा रही हैं। आपकी यात्रा समुद्र, आकाश, पृथ्वी तीनों द्वारा हुई है। आप मद्राससे जहाजमें सवार हुईं; वहाँसे लङ्कामें दो-चार दिन प्रसिद्ध-प्रसिद्ध स्थानोंको देखती हुई जावा और

बाली-द्वीपोंको गई; फिर आस्ट्रेलिया। मैंने उनसे पूछा, आस्ट्रेलियामें क्या केवल गोरे लोग बसते हैं? उन्होंने कहा, अब कहीं केवल गोरे या काले या पीले या लाल नहीं बसते। सभी जगह सब रंगके लोग बसते हैं। मुझे आपका परिचय है। मैंने 'ल्हासा' में आपका चित्र और वृत्तान्त पढ़ा था। आप बीसवीं शताब्दीकी बात करते हैं। उस समय भारतमें ऊँच-नीच भावोंसे भरी नाना जातियाँ थीं; वैसे ही दूसरे देशोंमें भी स्वार्थपूर्ण वर्णभेद, वर्ग-भेद थे। अब उनका कहाँ पता है? हमारे आन्ध्र प्रान्त, तामिल प्रान्त अथवा केरल प्रान्तमें यदि पहलेकी बातें स्मरण कर पूछें—क्या अब भी तुम्हारे यहाँ 'परियाँ' हैं, अब भी तुम्हारे यहाँ 'थीया' हैं, अब भी वह 'अय्यर' और 'नम्बूदरीपाद' हैं, जो 'थीयों' को छायासे अपवित्र हो जाते थे?

मैं—"तो क्या, आपके कहनेका मतलब यह तो नहीं कि अब यह बातें बिलकुल नष्ट हो गईं।"

महिला—"नष्ट ही नहीं हो गईं, कबकी भूल भी गईं। अब वह बातें इतिहासके जिज्ञासुओंके लिए पुस्तकोंमें रह गई हैं। अब आस्ट्रेलिया या किसी भी स्थानमें पुराना पक्षपात और दुराग्रह नहीं। सब जगह आगत-अतिथि की वैसी ही पूजा होती है, जैसी अपने देशमें।"

मैं—"मैं आपको प्राय: हिन्दी अथवा "शुद्ध भारती' भाषा बोलते देख रहा हूँ। आपके देशकी 'इकड़े-तिकड़े' वाली बोली तो इधरवालोंके लिए कोई अर्थ ही नहीं रखती थी। आपने यह भाषा कब और कहाँ सीखी?"

महिला—"प्रत्येक भारतीयकी 'भारती' तो मातृभाषा है। मेरी भी यह मातृभाषा ही है।"

मैं—"तब क्या आन्ध्रवालोंकी 'तेलगू' मातृभाषा नहीं?"

महिला—"यह नहीं कह सकती हूँ। तेलगू भी लोग जानते हैं। बहुत दिनों तक अर्थात् २०६६ ई० तक उनका आग्रह था कि हमें तेलगूको मातृभाषा तथा सर्व व्यवहारोपयोगी बनाये रखना चाहिये।

किन्तु सारे भारतकी उपयोगी राष्ट्रीय भाषा होनेसे 'भारती' तो पढ़नी ही पड़ती थी, नहीं तो मनुष्यको कूप-मंडूक बन जाना पड़ता। लोगोंने इस दोहरे परिश्रमके लिए सबका बहुत-सा समय बरबाद करना उचित न समझा। उधर जब सार्वभौम गण होनेसे पूर्व ही एशियावालोंने एक राष्ट्र बनाकर सार्वभौमी को अपनी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बनाई, तो लोगों-पर और प्रभाव पड़ा। अब 'भारती' के साथ सार्वभौमीका भी जानना प्रत्येक नागरिकका अनिवार्य हो गया। इसलिए 'भारती' ही मातृभाषा हो गई। यह केवल वहीं 'तामिल', 'केरल', 'कर्नाटक' में भी।"

मैं—"तो क्या आपने अपनी प्राचीन मातृभाषाओंकी चिताओंपर 'भारती' का महल उठाया है।"

महिला—"भाषा तो अस्थिर होती है। कौन भाषा है, जो दो सौ वर्ष तक एक रूपमें रह गई? हमारे पड़ोसमें ही 'तमिलनाड' है। वहाँ ८-१० शता[illegible] पूर्व जो भाषा थी, वह आपकी बीसवीं शताब्दी की 'तमिल'से पृथक् 'शन्तमिल्' कही जाती थी। उस समयके लोगोंके बिना पूरा श्रम और समय लगाये उसका समझना असम्भव था।"

मैं—"तो आपकी रायमें भाषा और उसके साहित्यकी रक्षाका प्रयत्न ही निरर्थक है?"

महिला—"नहीं, मैं यह नहीं कहती। भाषाकी भी यथावसर रक्षा होनी चाहिये। साहित्यको तो अक्षुण्ण रखना चाहिये किन्तु केवल भाषाकी रक्षाके लिए मनुष्य जातिकी एकताका बलिदान नहीं किया जा सकता। उसकी रक्षाका काम जातिके कुछ आदमी कर सकते हैं। जिनकी भाषा-विज्ञान, इतिहास अथवा विशेष साहित्यकी ओर स्वाभाविक रुचि हो, यह भार उनके ऊपर निश्चिन्ततापूर्वक छोड़ देना चाहिये। संसारका उपकार अनेक भाषाओंको सुदृढ़ करनेमें नहीं है, बल्कि सबके आधिपत्यको उठाकर एकके स्वीकार करनेमें है। जैसे अन्य हितके कामोंमें मनुष्योंका पूर्वका पक्षपात बाधक होता था, वैसे ही यह भी एक प्राचीन निरर्थक पक्षपात था। यह भ्रमपूर्ण पक्षपात ही तो था, जो भारत बीसवीं

शताब्दीमें नाना जातियोंमें विभक्त हो आपसहीमें कट-मर रहा था। यह वही अन्ध-विश्वास था, जिसके कारण इंग्लैंड 'दशमलव' तथा 'मालिक' मापोंको फ्रांसका समझ कर उसे अधिक उपयोगी और शुद्ध होने पर भी उन्हें कबूल न करता था। अब उस पक्षपातका संसारमें स्थान नहीं। अब ससारके सभी स्थानोंमें अर्थ-शास्त्रीय दृष्टि एक है। एक समय था कि भारतमें ही हिन्दी-उर्दूका झगड़ा था। समय आया कि वह झगड़ा मिट गया और दोनोंकी प्रतिनिधि 'भारती' भाषा भारतकी राष्ट्रीय भाषा हुई। फिर बड़ी मुश्किलसे सारे प्रान्तोंने देवनागरी वर्णमालाका प्रान्तीय भाषाओंकी वर्णमाला होना स्वीकार किया। अन्तमें तो अब सबने 'भारती' भाषाको ही मातृभाषा बना लिया। पुरानी भाषा अब भी पढ़ी जाती है। अब भी उसके साहित्यका रस लिया जाता है, किन्तु उस संकीर्णताके साथ नहीं। सभी तो साहित्य-सेवी नहीं होते। जिनकी रुचि होती है, उनके पढ़नेका पूर्ण प्रबन्ध है। इस समय कितनी आसानी है? मुझे सार्वभौमीके द्वारा आस्ट्रेलिया, सम्पूर्ण एशियामें घर-सा ही मालूम पड़ा।"

मैंने उक्त विदुषीके इन भावोंको बड़े ध्यानपूर्वक सुना। पूछने पर मालूम हुआ कि आपका नाम गार्गी है। मैंने यात्राके बारेमें पूछा तो पता लगा कि आप आस्ट्रेलियामें कुछ दिन रहकर 'बोर्नियो' होती हुई 'निप्पोन्' (जापान) गईं। मैंने पूछा कि आस्ट्रेलियामें आबादी कितनी है। उन्होंने बताया, १६ करोड़। चीन, भारतवर्ष और जापानकी घनी आबादीवाले देशोंके बहुतसे लोग वहाँ जा-जाकर बस गए हैं। पहलेके इंग्लैंड आदि देशोंके बसे हुए भी लोग हैं, किन्तु उनकी संख्या इतनी आबादीमें बहुत कम है। यह भेद भी ऐतिहासिकोंके महत्वका है। वहाँ-वालोंके लिए तो कोई भेद ही नहीं। मैंने पूछा 'फूजियामा' को भी निप्पोन्में देखा? वहाँ १९१३ के चन्द घंटोंके भूकम्पने सात लाखकी बलि ले ली थी? उत्तरमें उन्होंने 'हाँ' कहा। पीछे वह नानकिन चली आईं। फिर पेइपिंगसे मंचूरियाके कई स्थानोंमें घूमती साइबेरिया पहुँचीं।

वहाँसे उत्तरी ध्रुवका दर्शन करती हुई, साइबेरिया, मंगोलिया, और तिब्बत होती अब अपने विद्यालयको लौट रही हैं। ज्योतिष-शास्त्र और भूगोलसे आपका बड़ा प्रेम है। इन्हीं दोनोंके सम्बन्धमें आपने यह बड़ी यात्रा की है। हाँ, साथमें आपके दो और अध्यापक रहे, जिनमें एक 'विश्वभारती' के प्रोफेसर हक और दूसरे अलीगढ़ विश्वविद्यालय के प्रोफेसर विश्वनाथ। वह दोनों सज्जन भी सामनेकी बेंचों पर बैठे थे। पहले उन्होंने भी अभिवादन किया था, किन्तु मुझे कुछ मालूम न हुआ था। बात यह है, वस्त्र तो अब सबके एकसे होते हैं, जब तक विशेष वार्तालाप न हो, अथवा कोई परिचय न कराये, तब तक कैसे जाना जा सकता है कि कौन क्या है ?

आजकलके जेल भी दूसरे ही प्रकारके हैं। बीसवीं शताब्दीके जेलोंसे इनका मुकाबिला क्या ? क्या यहाँके कैदियोंकी जरा-जरा-सी बातमें गाली और जूतोंसे पूजा होता है ? ऐसी बात सुनकर तो आजके लोग पहलोंकी बुद्धिपर अफसोस करेंगे। आजकल तो कहा जाता है, अपराध भी मनुष्य किसी मानसिक रोगोंके कारण करता है; उसकी चिकित्सा होनी चाहिये—उसको शिक्षा देकर सुधरनेका अवसर देना चाहिये। भला वह लोग क्या शिक्षा देंगे, जिन्हें कैदी अपने ही जैसा चोर-डाकू जानते हैं? इसलिए आजकलके जेलर होते हैं अत्यन्त नम्र, मानस-शास्त्र और आयुर्वेदके पारंगत विद्वान। कितने ही अपराधियोंके लिये शल्य-चिकित्साकी भी आवश्यकता पड़ जाती है। रोगीको जिस प्रकार सावधानी और शान्तिसे रखा जाता है, वैसे ही अपराधी को। दंड केवल इतना ही समझिये कि उसको पूर्ववत् स्वच्छन्दता नहीं रहती। भोजन वैसा ही सुन्दर, वस्त्र वैसा ही बढ़िया, मकान-शिक्षा आदिका प्रबन्ध भी अत्युत्कृष्ट। वहाँ ऐसे शिक्षक-जेलरकी शिक्षामें रहकर वह सुधर जाता है। पीछे फिर अपने कार्य पर जाता है। जैसे आजकल रोगियोंकी संख्या अत्यन्त अल्प है, अपराधियों की संख्या तो उससे भी अल्प है। बात यह है कि धनी-गरीब तो कोई है नहीं, जो वस्तु, भोजन, वस्त्र और गृह-सामग्री एकके पास है, वही दूसरेके पास भी

है। जब पर्याप्त तथा वैसे ही सुन्दर कोट-कमीज मेरे पास हों, जैसे कि दूसरोंके पास, तो मैं क्यों चुराऊँगा? पेट-भर खानेके लिए सभी स्वादिष्ट पदार्थ मुझे, मेरी स्त्री, मेरी लड़की और मेरे लड़कोंको बिना चोरी या दगाबाजीके मिलते हैं, तो मैं वैसा क्यों करने जाऊँगा? कोई चीज चुराकर बेचूं, तो पहले दुनियामें न खरीदार ही हैं; न रुपया। रुपया लेकर भी क्या करना है? बुढ़ापेके लिए? सो तो राष्ट्रकी ओरसे वृद्धोंके लिए परिचारक तथा सब प्रकारके आरामका वैसा ही प्रबन्ध है, जैसा रोगियोंके लिए। फिर रुपयोंकी आवश्यकता? बेटे-बेटियोंके लिए? यह भी नहीं। तीन वर्ष तक राजकुमारोंकी तरह उनके पाले जानेका वर्णन हो चुका है। तीनसे बीस वर्ष तक भी उसी प्रकारके आरामके साथ उत्तमसे उत्तम शिक्षासे भूषित होनेका प्रबन्ध राष्ट्रकी ओरसे है ही। शिक्षा-समाप्तिके बाद योग्य विदुषी कन्यासे इच्छानुसार ब्याह, बिना बारात, जेवर, दहेज आदिके झगड़ोंके हो जाता है। तब रुपयेसे क्या मतलब?

इस प्रकार चोरी तो आजकलके शासनमें असम्भव है। जमींदारी, काश्तकारी, माल-मिल्कियत किसीकी है ही नहीं, सभी राष्ट्रीय सम्पत्ति है। फिर दीवानी-अदालतोंका खात्मा ही है, साथ ही जमीनके दखल-बेदखल आदिके झगड़े, मार-पीट, खून-खराबीका होना भी बन्द है। आबकारीका कानून, फैक्टरीका कानून, सिक्कोंका कानून, स्टाम्पका कानून, हथियारोंका कानून इत्यादि हजारों कानूनकी जड़ें ही कट गई हैं। इनमें से बहुत-सी चीजोंका संसारसे ही नाम उठ चुका है। अब अपराध यह हो सकता है कि बातके लिए कहीं तकरार होकर झगड़ा हो जाय।

स्त्री-पुरुष दोनों स्वतंत्र हैं। दोनोंका पति-पत्नी बन्धन प्रेमका है। पति का पत्नी पर उतना ही अधिकार है, जितना कि पत्नीका पति पर। वह पुरुष होनेसे उसपर कोई विशेष अधिकार नहीं रखता। ब्याह भी दोनोंके युवा होनेपर, सुशिक्षित तथा सुचतुर होनेपर, दोनोंकी पूर्ण स्वीकृतिपर, बिना किसी दबाव और बिना किसी धनादि के प्रलोभनके होता है। ऐसी अवस्थामें दोनोंका प्रेम स्थायी होना ही स्वाभाविक है। किन्तु यदि निर्वाह

न हो सके—किसी कारणसे अथवा पहले जल्दी करनेसें भूल हुई—तो अब भी दोनों स्वतन्त्र हैं। दोनोंके रास्ते खुले हैं। दोनों ब्याह-सम्बन्ध-विच्छेद करके अपना-अपना रास्ता ले सकते हैं। उनके वैसा करनेसे समाजकी ओरसे कोई बाधा नहीं।

इतना होनेपर भी यदि बदचलनीसे कहीं झगड़ा, फसाद या मार-पीटका मौका आ जाय, तो इससे भी जेलके लिए कैदी मिलते हैं। अनिवार्य तथा बहुत ताकीद करने पर राष्ट्रीय नियमोंका न पालन करने पर भी मनुष्य जेल भेजा जा सकता है। संक्षेपमें अपराधी होने के यही तीन-चार कारण हैं।

इनके देखने तथा बीसवीं शताब्दीके अपराधोंसे मिलानेही से ज्ञात होगा कि कैदी कितने रह जायँगे। मालूम हुआ, नैपाल भरमें एक ही जेल है, जिसमें कुल ५० कैदी हैं। बिहारमें भी एक ही जेल है, जिसके कैदियोंकी संख्या कभी सौ से ज्यादा नहीं हुई। ऐसी बात भारतहीके प्रांतोंमें नहीं, दूसरे देशोंमें भी है। पुराने जमानेमें चोरीके लिए बड़े-बड़े दंड मुकर्रर किये गये थे, जिसका कि अस्तित्व ही आर्थिक प्रणालीके दोष पर निर्भर था। दूसरोंके परिश्रमकी कमाईको कानूनकी भूल-भुलैया में डालकर हड़प जानेवाले तो महाजन महापुरुष और रात-दिन खून-पसीने को एक कर अपने और अपनी सन्तानका पेट न भरनेसे लाचार हो-कर उसी पराये मालके हड़पनेवालेकी लूटकी ढेरीसे अपनी प्राणरक्षा भर के लिए थोड़ा ले लेना बहुत भारी अपराध समझा जाता था। बात यह है कि उस समयकी धारणा ही दूसरी थी। दो चार आदमियोंको लेकर दूसरेका धन हरनेवाले चोर, सौ-पचास लेकर दिन दहाड़े लूटनेवाले डाकू, दस हजार लेकर दूसरोंकी जन्मभूमि छीन लेनेवाले विजयी—दिग्विजयी कहलाते थे। सिकन्दर और एक डाकूमें तात्विक दृष्टिसे तो कोई भेद नहीं; केवल परिमाणका भेद था। परिमाणके भेदसे तो कुछ और ही होना चाहिये था, क्योंकि थोड़े पापवाला थोड़ा पापी, बड़े पापवाला बड़ा पापी होता है। इस तरह तो सिकन्दर आदि बड़े चोरोंकी बड़ी निन्दा होनी चाहिए

थी, किन्तु वह दुनिया ही दूसरी थी। चोर कौन कहे, उलटे लोग उन्हें प्रतापी, महाप्रतापी, दिग्विजयी, विश्वविजयी कहने लगे। सारांश यह कि उस समयके अनेक अपराध कृत्रिम तथा बलात्कारसे कराये जाते थे।

हमारी गाड़ी दनादन चली जाती थी! कहीं चढ़ाई और कही उतराई, तो कहीं पहाड़की सुरंगमें होकर रास्ता था। अभी आस-पासके पहाड़ोंपर अनेक प्रकारके फलोंका ही बगीचा था। आखिर कुछ घंटों चलनेके बाद हमारी गाड़ीने पहाड़ छोड़ा। अब घने जंगलोंका रास्ता था। पुराने-पुराने शालके ऊँचे और मोटे वृक्ष थे। बीच-बीचमें और भी बड़े-बड़े दरख्त थे। मुझे मालूम था ही कि इस तराईमें बाघ और हाथी तथा कई तरहके जानवर होते थे। मैंने उनके बारेमें पूछा। मुझे बतलाया गया कि इन जंगलोंमें उन हिंसक जीवोंका नाम नहीं। सारे हिंसक जीव मार डाले गये हैं। उनके मूलकी रक्षा प्राणि-संग्रहालयोंमेंकी जाती है; जो दो-चार नर और मादा रखे गये हैं, उनके खानेके लिए नकली मांसके टुकड़े दिये जाते हैं, जिन्हें वह पहचान नहीं सकते। हाथियोंको भी फँसा-फँसाकर प्रायः जंगल खाली कर दिया गया है। उनका भी जाति-उन्मूलन क्रियासे विनाश-सा ही कर दिया गया है। अब केवल प्रदर्शनी तथा विद्याके उपयोगके लिए कुछ रखे गये हैं। अब यह जंगल निष्कंटक हो गया है।

अभी दो-तीन कोस गये होंगे कि एक स्टेशन आया। यहाँके माल-गोदाम बहुत भारी तथा यहाँसे दो लाइनें जंगलोंकी ओर गई थीं। उनके बारेमें पूछनेपर मालूम हुआ कि ये लाइनें दूर तक गई हैं। यहाँसे पूर्व थोड़ी दूरपर एक बड़ा भारी ग्राम है, जिसका नाम कागज-ग्राम है; जिसमें दस हजार लोग बसते हैं। बस्तियोंका ढंग दूसरे ग्रामोंका सा ही हैं। वहाँके निवासियोंको भी किसी प्रकारकी सुख-सामग्रीसे वंचित होना नहीं पड़ता। कागज-ग्राममें कागजका बड़ा भारी कारखाना है। लकड़ियोंके काटने, टुकड़े करने, उठाकर कारखाने तक लाने, चीरने-फाड़ने, पकाने-गलाने, 'पल्प' तैयार करने, कागज बनाने, काटने, तह लगाने आदि सभी कामोंके लिए बिजली द्वारा चलाई जाने वाली मशीनोंका प्रयोग किया

जाता है। यहांसे कागज तैयार होकर छापाखानों में जाते हैं। रद्दी कागज, सड़े-गले कपड़ों आदिसे भरे रेलके डिब्बे मैंने स्टेशनपर खड़े देखे, जिनके बारेमें मालूम हुआ कि यह सब कागज बनानेके लिए जा रहे हैं। पता लगा कि कागज बनानेके सभी उपकरण बांस, घास, लकड़ी आदि यहां प्रचुर परिणाममें हैं। अतः यहां इसका कारखाना खोला गया है। वहांसे आगे लकड़ीके भी कारखानों वाले ग्राम हैं, जिनमें मशीनों द्वारा लकड़ीके तख्तोंको चीरकर चौखट, किवाड़, चौकी, तिपाई आदि सभी काठके सामान बनाये जाते हैं।

अब हमारी गाड़ी और आगे चली। मैंने मन-ही-मन विचार किया, अब थोड़ी देरमें जङ्गलसे पार हो जायँगे। किन्तु इतनी देर होने पर भी देखा, अभी तक गाड़ी जङ्गलही में जा रही है। अब जंगलमें ज्यादा वृक्ष 'सागौन' के थे। मैंने पूछा, ऐसी लकड़ियाँ तो इधर नहीं देखी थीं। विश्वामित्रने कहा—यह लकड़ियाँ ही नहीं, पहले यहाँ खेत और गाँव बसे थे। यह सौ वर्षसे कुछ ऊपरकी बात है, जब यहाँ 'सागौनका' जंगल लगाया गया, अब तो इनसे लकड़ीकी चीजें बनानेवाले यहाँ कई ग्राम हैं। इस तराईके लकड़ी और कागजके कारखानोंके बने लकड़ी और कागजसे आधे भारतवर्षका काम चलता है। इस जंगलसे वृष्टि होने और आगेके पहाड़ोंमें तरावट आनेमें भी मदद पहुँची है। तराईके सागौन और शाल-की लकड़ी बड़ी दृढ़ और सुन्दर होती है।

गाड़ी बीचमें दो-दो, तीन-तीन मिनट रुकती दनादन चली जा रही है। जहाँ-तहाँ स्त्री-पुरुष मेरे आनेका समाचार सुनकर देखनेके लिए स्टेशनोंपर आये हुए हैं। उतरनेका तो कोई काम नहीं। खिड़कीपर बैठा ही हुआ हूँ, सफेद बड़ी-बड़ी दाढ़ी खुद ही परिचय करा देती है। गाड़ी रुकते समय थोड़ी देरके लिये हमारी बात कट जाती है; नहीं तो बराबर गाड़ीकी तरह वह भी चलती ही जाती है। अब हम लोग जंगलोंके बाहर चले आये। अब सड़कके दोनों ओर हरी-हरी घासोंका मैदान है। मैंने पूछा—क्या जेठ मासमें भी सभी घासें हरी

हैं ? क्या तुम लोगोंने और चीजोंकी भाँति बादलोंको भी तो अपने काबूमें नहीं कर लिया ? अध्यापक हूकने कहा, हाँ, अब वृष्टि कराना भी हमारे हाथमें हो गया है; आवश्यकता पड़ने पर विज्ञान द्वारा वृष्टि कराई जाती है। किन्तु यहाँ तो समय-समय पर हरी घासोंको, जगह-जगह फैले हुए नलोंके जलको खोलकर सींच दिया जाता है। वृष्टि ऊँचे, सूखे पर्वतोंको हरा करनेके लिए कराई जाती है। नहीं देख रहे हैं, भूमि कैसी समतल, पानीके तलके बराबर है ? मैंने पूछा, बरसातका पानी भूमिको काट-काटकर ऊबड़-खाबड़ नहीं बना देता ? इसपर उन्होंने कहा, पानीकी चलती तो वह ऐसा करनेमें कब चूकता, किन्तु अब उसका रास्ता निर्दिष्ट है। कितना ही पानी बरसे, उन पक्के रास्तों अथवा नलों द्वारा बड़े नालोंमें होकर नदीमें पहुँचा दिया जाता है। रेलकी सड़कको नहीं देख रहे हैं, कदम-कदमपर लोहेके पुल बँधे हुए हैं। जलके रास्तेपर कहीं जबर्दस्ती नहीं है।

अब गायोंके झुण्ड चारों ओर बिखरे हुये बड़े सुन्दर दिखाई देने लगे। अब तक तो सड़कके किनारे तार नहीं गड़े थे, किन्तु अब तो तार भी बराबर गड़े हुए थे, जिनमें गायें चलती गाड़ीके आगे न आ जायें। बहुतही सुन्दर और बड़ी-बड़ी गायें थीं। जिनकी सूरत देखते रहनेको तबियत चाहती थी। गायोंसे बछड़े अलग करके दूर चराये जा रहे थे। हरी-हरी घासोंको बड़े प्रेमसे गायें चर रही थीं। मैंने कहा, अब दाना-खलीकी इन्हें क्या अवश्यकता ? इसपर अध्यापक विश्वनाथने कहा—तब भी खली, मक्काका दाना, कण और चोकर इन्हें दिया जाता है। सायं-कालको थानपर जाते ही इनको यह स्वादिष्ट व्यारू कराया जाता है। मैंने जगह-जगह देखा कि लम्बे-लम्बे पक्के हौजोंमें साफ पानी लबालब भरा हुआ है। पानी इनमें बराबर आता और निकलता रहता है। यहाँ गायें आकर पानी पीती हैं, जगह-जगह हरे-हरे वृक्षोंकी छाया है। कुछ गायें वहाँ भी बैठी जुगाली कर रही हैं। गायोंके झुंडमें कई भीमकाय साँड़भी दिखाई दिये। इनमें कुछ चर रहे हैं, और कुछ 'अव्-भाँ' कर रहे हैं। साँड़ोंके

देखते ही मुझे एक बात स्मरण आ गई और मैंने अध्यापक हकसे पूछा, आप लोग खेत तो बिजलीके हलोंसे जोतते हैं; और गाड़ी भी बिजलीही-से चलाते हैं; बैलोंके खानेवाले भी नहीं। साँड़ रखनेको सौपर दो-तीन बैलोंकी आवश्यकता पड़ती होगी, फिर इतने बछड़े, जो पैदा होते होंगे, किस काममें आते हैं ?

हक—कितने बछड़े ? हमलोग पैदा ही इतने बछड़े होने देते हैं, जितने साड़ोंकी आवश्यकता है, बाकी बछियाँ ही पैदा कराई जाती हैं।

मैं—तो क्या अब आपने यह विद्या भी पा ली है ?

हक—हाँ, जो-जो आवश्यकता और कठिनाई मार्गमें आती गई, हमने परिश्रम किया और उसका हल भी मिल गया।

मैंने हँसते हुए कहा—भाई ! तुमने सब बातोंमें कमाल किया। सब कठिनाइयोंको सरल और असम्भवोंको सम्भव बना दिया। तुम शायद एक भी असम्भव बात न जानते होगे। यही गायें हैं, जिनको लेकर २०वीं और उससे पूर्व की शताब्दियोंके हिन्दू-मुसलमान प्रलय तक एक दूसरेके खूनके प्यासे बन बैठे थे ।

हक—वे हमारे पूर्वज चले गये, उनके लिए अब कुछ कहना तो ठीक नहीं, तो भी यह निरा अज्ञान था। दोनों अपनी हमेशाकी भलाईकी ओर नहीं देखते थे। सोना लुटा जा रहा था और कोयलोंपर लट्टमलट्ट करते थे। सचमुच आजकल जब कभी हमलोग पुरानी बातोंको पढ़ते हैं, तो हँसी आये बिना नहीं रहती।

अब मालूम हुआ कि अगला स्टेशन गो-ग्राम है। मैंने गो-ग्रामके विषयमें बहुत कुछ दर्याफ्त किया, जिसका सारांश यह है—इस ग्राममें पाँच हजार आदमियोंकी बस्ती है। असल आदमियोंकी बस्तीको तो गो-ग्राम न कहकर गोपाल-ग्राम कहना अच्छा होगा; क्योंकि गाँवमें तो एक भी गाय नहीं रहती। गाँव स्टेशनसे लगा हुआ है। गायोंका गोष्ठ वहाँसे एक मीलकी दूरीपर है। चरनेका मैदान तो कई कोसमें है।

इस मैदानमें जहाँ-तहाँ घासके ताड़ बराबर ऊँचे ढेर लगे हुए हैं। गाय-बच्चे मिलाकर सब एक लाख तक पहुँच जाते हैं। इनमेंसे प्रायः आधी तो दूध देनेवाली गायें ही होती हैं। भला, इतनी गायोंको कौन दुह सकता है? किंतु विज्ञानने जैसे और कठिनाइयोंको सरल कर दिया, वैसे ही इसे भी सरल कर दिया है। गायें पाँतीसे खड़ी रहती हैं; उनके बीचसे मोटे-मोटे नल गये रहते हैं, और इन नलोंसे निकले छोटे नल गायोंके नीचे जाते हैं; जिनमें लगी रबड़की नलियाँ स्तनोंमें लगा दी जाती हैं। बस मशीन द्वारा सभी दूध दुहकर बड़े नलों द्वारा रेलकी लाइनपर खड़ी दूधकी गाड़ियोंके डिब्बे में गिरता है। डिब्बे भरते जाते हैं और जिन-जिन गाँवोंमें उनका खर्च है, वहाँ रवाना होते जाते हैं। यहाँ दूध बिना हवा देखे ही डिब्बोंमें बन्द हो जाता है। वहाँ भी उसे हवाका साक्षात्कार नहीं होता। बड़े बर्तनसे छोटे बर्तनोंमें भी ऐसे ही नलोंके द्वारा उसे ले जाया जाता है। खर्चवाले गाँवोंमें जाकर बन्द ही उसको बिजलीकी आँच से गर्म कर दिया जाता है। पीनेके वक्त ही वह दूध जरा देरके लिए हवाका मुख देखता है। गो-ग्राममें दूध गर्म करने आदिका कोई बखेड़ा नहीं। वहाँवालों का काम है, गौओंकी हिफाजत करना, उनकी अच्छी सन्तान पैदा करना, दूध निकालना, स्थान-स्थानपर आवश्यकतानुसार भेजना और बस। ब्याई, बिन ब्याई, बच्चे सबके लिये चरने और रहनेके पृथक्-पृथक् स्थान हैं, जहाँसे बिना मर्जीके अपने आप वह इधर-उधर नहीं आ जा सकते। गाय, भैंस, भेड़, बकरीके गाँवोंमें कुछ घोड़े भी पाले जाते हैं। चरवाहे घोड़ोंपर चढ़कर इच्छानुसार अपने गल्लेपर शासन करते हैं। बीमा, बुड्ढे पशुओंके आराम और चिकित्साका वैसा ही प्रबन्ध है, जैसा कि मनुष्यों के लिए। गाँवके लोग अपनी ड्युटीके अनुसार आ-आकर काम करते हैं। गो-ग्राम खेतीवाले ग्रामोंको लाखों मन खाद देता है। यह खाद बराबर रेलोंपर लादकर पहुँचाई जाती है।

अगला स्टेशन भैंस-ग्रामका था। चरनेका वही मैदान आगे भी

बढ़ता चला आया था। जैसी सुन्दर विशाल गायें देखी थीं, वैसे ही भैंसे भी दिखाई पड़ीं, इनके सामने हाँसी-हिसारकी बीसवीं शताब्दीकी भैंसे तुच्छ हैं। काली-काली देह। इनके स्तन बोतलकी भाँति झलकते थे; जिनको देखनेहीसे मालूम होता है कि यदि एक मन नहीं, तो कुछ ही कम दूध देती होंगी। भैंस-ग्रामके विषयमें मालूम हुआ कि यहाँ भी उतनी भैंसें हैं, जितनी पिछले गो-ग्राममें गायें। इकका उत्तर सुनकर मैंने फिर न पूछा— साँड़से अधिक भैंसोंका क्या होता है? भैंसोंको पानीमें बैठनेसे बड़ा प्रेम है; इसके लिये स्थान-स्थानपर चौड़े-चौड़े कुण्ड बने हुए हैं, जिनमें पानी आता और निकलता रहता है। खाने, पीने, रहने, दवाई-दर्पन सबका प्रबन्ध गो-ग्राम-सा ही है। किन्तु भैंस-ग्राममें दस हजार आदमी बसते हैं, जिनके लिए काम भी विशेष है। बात यह है कि गायोंकी भाँति भैंसोंका दूध नहीं भेजा जाता। भैंसोंका दूध वैद्यकी सम्मतिसे कही थोड़ा-बहुत भेजा जाता है। नहीं तो सब दूध मशीन द्वारा मथन करके दुहनेके बादही मक्खन निकाल लिया जाता है। यह मक्खन बर्फसे रक्षित गाड़ी के डिब्बोंमें बन्द करके स्थान-स्थानपर भेजा जाता है। आवश्यकता के अनुसार मक्खनसे घी बनता है।

"किन्तु, क्या मक्खन निकालकर हजारों मन दूधका अवशिष्ट भाग रोज फेक दिया जाता है?"

"नहीं, यहाँ बटनों का बड़ा भारी कारखाना है। दूध का सफेद घन भाग रासायनिक प्रक्रियासे पृथक् करके उनसे नाना रंग-बिरंगके बटन बनते हैं। बटन ही नहीं, दरवाजों, मशीनों आदिके सफेद हैंडलोंके लिए भी इसका उपयोग होता है, जिसमें आदमीका हाथ छूनेसे काला न हो। एक ओर बिजलीने धूएँको संसारसे विदा कर दिया तो दूसरी ओर इधर इसने हाथका काला होना भी बन्द कर दिया। आज क्या फैक्टरीके आदमीका रंग काला होता है? आर्ट पेपरपर चिकनाई लानेके लिये भी इस सफेदीका प्रयोग होता है। अब हाथी-दाँत तो पैदा नहीं होता, किन्तु

वह निस्सार दूध उसके कामके साथ और बहुत-से काम भी कर डालता है।"

घासोंके टाल तो मैंने जगह-जगह देखे थे, किन्तु पुआल, भूसाका गंज कहीं न मिला। पूछनेपर मालूम हुआ कि धान और गेहूँ आदिके डंठे भी यद्यपि कल द्वारा काटे जाते हैं, किन्तु साथ ही बाली थोड़े डंठेके साथ काटकर एक ओर रखी जाती है, और डंठलका बोझा अलग बँधता जाता है। यह डंठल और पुआल पीछे गाँठें बाँध-बाँधकर कागज के कारखानोंमें भेज दिये जाते हैं, जहाँ उनसे कागज बनाया जाता है। गाय-भैंसोंके खाने के लिए हरी और सूखी घास ही काफी होती है।

अब साढ़े तीनके तोपकी आवाज पासके किसी गाँवसे आई। हमारी गाड़ीवाले सभी लोग बेंचोंपर आकर बैठ गये। थोड़ी देरमें हवामें छतके तारके सहारे तैरता हुआ हमारे जलपानका तख्ता सामने आ गया। इस वक्त भोजनमें कुछ और ही नियामत थी। एक छोटी तश्तरीमें काली मिर्च लगाकर घीमें तले, नमकीन, हरी मटर तथा हरे चनेके दाने थे। दूधमें मिला हुआ एक-एक गिलास गन्नेका कच्चा रस अलग रक्खा हुआ था। इसके अतिरिक्त कुछ फल भी थे। मालूम हुआ, आजकलके लोग पुराने गाँवोंकी इन नियामतोंसे भी महरूम नहीं हैं। बताया गया कि ऐसे ही सभी मौसमकी चीजें बच्चे-बूढ़ों, पुरुष-स्त्रियोंके पास पहुँचा करती हैं। मक्काके दिनोंमें भुट्टे इसी तरह जलपानके समय पहुँच जाते, यदि हम उस समय सफर करते। हमारे गाड़ीके परिवारने जलपान किया। मेरे मनमें उस समय यह ख्याल आता था कि इसी युगके बारेमें बीसवीं शताब्दीके हिन्दू कहा करते थे, आगे घोर कलियुग आयेगा। पृथ्वी नरक हो जायगी। यह तो सभी दृश्य स्वर्गके मालूम होते हैं। शायद उस युगके स्वार्थियोंके लिये समस्त भूमंडल-वासियोंका इस प्रकार आनन्द भोगना नरक प्रतीत होता था।

हाथ-वाथ धोकर सामने खिड़कीसे देखा। निचले खेतोंमें कोसों तक चनोंकी हरियाली लहरा रही है। चनोंके सिवा दूसरी कोई चीज ही

नजर नहीं आती । पूछनेसे ज्ञात हुआ, अगला स्टेशन शालिग्राम है । वहाँ सिर्फ धान और चनोंकी खेती होती है । धानोंकी फसल कट जाने पर उन्हीं खेतोंमें चने बो दिये जाते हैं । पचास-पचास बीघोंकी एक-एक क्यारी जिसके चारों ओर ऊँची मेंड़ें थीं । बासमती, किसुन भोग, कनक जीरा आदि उत्कृष्टतम धानोंको छोड़कर मोटे धानोंकी तो अब खेती ही एक तरहसे बन्द है । विद्यालयोंमें उनको मूल-रक्षा तथा परिचय के लिये थोड़ा बोया जाता है । बाकी खाने के लिये तो सब अच्छे-ही-अच्छे चावल हैं । यह शालिग्राम भी १० हजार आदमियोंका ग्राम है । यहाँ खेतीके अतिरिक्त चावल अलग करनेका भी कारखाना है । धान-कुटाईका काम भी बस मशीन हीसे । चावल तैयार होते जाते हैं, और स्थान-स्थानपर गाड़ियोंमें भर-भरकर रवाना होते रहते हैं । चनोंकी दाल और बेसन बनाकर तथा साबित भी चालान किया जाता है । पुआल तो कागजके कारखानोंहीमें चला जाता है । हाँ, धानकी भूसी तथा और कूड़े-करकट को गड्ढोंमें सड़ाकर खाद बनाई जाती है । बाकी खाद गो-ग्राम, भैंस-ग्रामसे आती है । कितने ही पशुओंके ग्रामोंमें हड्डी पीसने के कारखाने हैं । मुर्दे पशुओंका, पहले बता दिया गया है, कोई चमड़ा नहीं उतारता । उन्हें गाड़ दिया जाता है । पीछे सड़ी मिट्टी तो खादके स्थानपर भेज दी जाती है, और हड्डियाँ कलोंमें चूर्ण कर दी जाती हैं । यहाँ उनसे बहुत-सी फास्फोरस भी निकाली जाती है, जिन्हें दियासलाई बनाने आदिके काममें लाया जाता है । यद्यपि सिगरेट के बन्द होने तथा आगके स्थानपर बिजलीके उपयोग होनेसे दियासलाइयों का खर्च बहुत कम क्या, नहींके बराबर है; तब भी एकाध कारखाने दियासलाई के रखे गये हैं ।

शालिग्रामका खेलका मैदान स्टेशनके पास ही सड़कके किनारे था । देखा, सहस्त्रों स्त्री-पुरुष वहाँ जमा हुये हैं । 'फुटबाल' खेला जा रहा है । बड़े-बड़े जवान खेलमें लगे हुए हैं । ओह, अभी एक गोल हुआ—सारी दर्शक मंडलीने प्रसन्नता प्रकट की । आगे इधर कबड्डी जमी हुई है । हरी घासपर जाँघिया और बनियाइन पहने खिलाड़ी खेल रहे हैं । स्थान

सड़कसे लगा हुआ है, और गाड़ी भी स्टेशनके पास आनेसे बहुत धीमी पड़ गई है; इसलिए इनके पुष्ट, सुन्दर और स्वस्थ शरीर खूब दिखलाई पड़ रहे हैं।

रेलोंकी सड़कोंके नीचेसे जगह-जगह नहरें जाती दीख पड़तीं। विश्वामित्रने कहा—अब गण्डक, गंगा आदि नदियोंकी धारा उतनी मोटी नहीं मिलेगी, जितनी कि पहले थी। सारे देशमें नहरोंका जाल बिछा हुआ है। इन नदियोंके पानीका बहुत-सा भाग तो ऊपरसे ऊपर ही नहरोंमें ले लिया जाता है। सभी ग्रामोंमें यद्यपि अपने कारखानोंकी भापके लिए पानीकी आवश्यकता नहीं है, किन्तु सब कुछ हरा-भरा और साफ रहनेके लिए उसकी बड़ी आवश्यकता है। खेती और बगीचेवाले गाँवोंको तो सींचनेकी भी हर वक्त आवश्यकता पड़ती रहती है। पानी और बिजली यही दोनों आजकलके संसारके प्राण हैं; बल्कि बिजली भी तो पानीहीसे तैयारकी जाती है, इसलिए पानी आजकल सब कुछ है। इसका जैसा ही बड़ा भारी खर्च है, वैसा ही व्यर्थ व्यय भी न होने देनेकी ओर ध्यान है।

जंगल छोड़ते ही भूमि बराबर आ गई थी। अब पहाड़ भी दूर धुंधले बादलोंकी भाँति दीख पड़ते थे। चारों ओर मैदान-ही-मैदान था। बस्तीके पास ही वृक्ष थे, अन्यथा वृक्षोंका कहीं नाम न था। खेतोंमें खाद ले जाने तथा अनाज ढोनेके लिए छोटी-छोटी गाड़ियोंकी पतली-पतली लोहेकी कड़ियाँ दिखलाई पड़ती थीं। चनोंमें यद्यपि फल लग गये थे, किन्तु अभी पके न थे—वह बिल्कुल हरे-हरे दिखलाई पड़ते थे, तो भी कहीं रखवालोंकी झोपड़ियाँ न दिखाई देती थीं। शालिग्राम स्टेशनसे कोसों आगे तक चनोंके खेत चले आये थे।

अब भूमि ऊँची आई। चनोंकी जगह पर बड़ी-बड़ी बालियोंवाले गेहूँके खेत हैं। सड़कके दोनों तरफ जहाँ तक दृष्टि जाती है, हरे-हरे गेहूँ ही दिखलाई पड़ते हैं। हवाके झोकोंसे हिलते हुए ये प्रशान्त सागरमें हल्की तरंगोंके समान मालूम देते हैं। गेहुँओंके स्वाद और आटेकी

सफेदीके बारेमें क्या कहना है ? किन्तु मुझे गेहूंके दाने अभी देखनेको न मिले थे। मैंने बिश्वामित्रसेपूछा कि क्या हमारे समयके पूसा नं० ३ से भी यह दाने अच्छे होते हैं। उन्होंने कहा—पूसा नं० ३ विद्यालयके संग्रहालयमें रक्खा हुआ है; वह भला इन गेहुंओंका क्या मुकाबिला कर सकता है ? खेतकी जुताई, कटाई, दंवाई आदि सभीके बारेमें तो इकट्ठा ही सुन चुका था कि बिजलीकी कलों द्वारा होती है। एक-एक मोटर हलमें दस-दस फाल पाँतीसे लगे रहते हैं, जो एक-एक साथ गहरी भूमि खोदते चलते हैं। पीछेसे लगा पटेला (सिरावन) ढेलोंको फोड़ता और भूमिको बराबर करता जाता है। बोनेका काम भी मशीनों ही द्वारा होता है। पकी खेतीका काटना, बाँधना, ढोना आदि सभी काम कलें ही करती हैं। अच्छी खाद और पर्याप्त जलकी अनुकूलतासे फसल जैसी चाहिए वैसी ही होती है। गेहूंके खेतोंमें सालमें दो फसलें होती हैं, बरसातमें मक्का और बाजरा बोया जाता है, फिर यह गेहूं। मक्का और बाजरेको आजकल आदमी केवल भुट्टा और होलाके तौरपर ही मौसममें दो-चार दिन खाते हैं; बाकी इन्हें गाय-भैंसोंको दिया जाता है। इनके डंठल भी कागजके कारखानोंमें जाते हैं। हरा होनेपर पासके किसी पशु-ग्राममें भी स्वाद बदलनेके लिए भेज दिये जाते हैं।

इस गेहूं-ग्राममें आटा पीसनेका बड़ा भारी कारखाना है। यद्यपि सभी गेहूंके ग्राममें खेतीके साथ-साथ पिसाईभी होनेका नियम नहीं है। किन्तु नजदीकमें और कोई ऐसा कारखाना न होनेसे इसकी आबादी दस हजार करके यहाँ कारखाना भी रखा गया है। आटा-मैदा सब यहाँसे तैयार होकर चालान होता है।

गेहूं-ग्रामकी सीमा पार होनेपर आम-लीची आदिके वृक्ष दिखलाई देने लगे। पूछनेपर ज्ञात हुआ, अब हम मोतीहारी के पास आ गये। यह बगीचा एक विद्यालयका है। पहले बतलाया जा चुका है कि तीन वर्षके बाद लड़के, लड़कियाँ माता-पिता तथा जन्म-स्थानसे अलग करके विद्यालयमें भेज दिये जाते हैं। प्रत्येक ३०-४० ग्रामके बीचमें एक ऐसा

विद्यालय रहता है, जिसमें दस-पन्द्रह हजार या कभी इससे भी अधि बालक-बालिकाएँ पढ़ते हैं। इनमें प्रायः सब प्रकारकी साधारण शिक्ष देनेका प्रबन्ध होता है। सत्रह वर्ष तक बालक-बालिकायें इन्हींमें पढ़ हैं। असाधारण प्रतिभाशाली, तथा विद्याकी ओर विशेष प्रवृ रखनेवाले बालक बीचमें भी एक विद्यालयसे दूसरे विद्यालयको—जह उस विद्याका समुचित प्रबन्ध होता है, भेज दिये जाते हैं। अध्यापकों य विशेषज्ञोंकी योग्यता प्राप्त करनेके लिए यहाँसे किसी अन्य विद्यालय जाना पड़ता है, नहीं तो साधारणतया यहींसे शिक्षा समाप्त कर विद्यार्थी कार्यक्षेत्रमें उतरते हैं। सभी विद्यालयोंकी शिक्षा-दीक्षा औ रक्षाका ढंग एक-सा ही है। विश्वामित्रजीने विशेष पूछनेपर कहा, य सब बातें तो नालन्दामें आँखोंके सामने ही आयेंगी।

अब मोतीहारी नगर आया। क्या अब उसे पुराने दर्शक पहिचान सक है? बिल्कुल उलट-पुलट गया है। आबादी तो अब दस हजार आद मियोंकी ही है; किन्तु आजकी स्वच्छता, सुन्दरता और एकरूपता पह कहाँ थी? पहाड़ पार करनेके बाद ही हम मल्लमें आ गये थे। मोती हारी मल्लका एक जिला है। प्रांतोंके नामोंमें इधर बहुत-कुछ परिवर्त हुआ दीख पड़ता है। पुराना सारनका जिला भी इसी प्रान्तमें है। उस पश्चिम काशी-कोसल लखनऊसे आगे तक चले गये हैं। उसके बाद कुर पाञ्चाल-मत्स्य-शूरसेन देशोंके इसी नामके गण हैं। दिल्ली अब भ भारतकी राजधानी या राष्ट्रधानी है। इस प्रकार देशों तथा गणोंके ना पुराने रखे गये हैं। पिछली शताब्दियों के इतिहास-सम्बन्धी स्थानों नाम भी ज्यों-के-त्यों रहने दिये गये हैं। यहाँ मोतीहारी नगरमें जिलाकी पंचायतका कार्यालय रहता है। सभापति और कार्यकारिणीके सदस अपने निर्वाचन-अवधि भर यहाँ ही रहते हैं। जिलाकी उत्पत्ति तथ आवश्यकताओंके अनुसार चीजें बाहर भेजने तथा मँगाने आदिका का एक प्रधान कर्त्तव्य है। जिलाके हिसाब-किताब तथा अन्य प्रकारके कागज पत्रोंके साथ पुराने कागज-पत्रोंका भी यहाँ संरक्षणालय है। इसके औ

जिला आफिसके अतिरिक्त दूसरे सारे ही मकान बिना कोठेके हैं। गाँवों और शहरोंके घर-द्वार, रहन-सहन, खाना-पीना किसी बातमें भी कुछ भेद नहीं। अब वह पुरानी सड़ी गलियाँ और गन्दे मकान कहीं नहीं दिखाई पड़ते। जिलाकी पंचायतकी बैठकका यहाँ एक वृहद् भवन है। नगरवालोंका संस्थागार इससे अलग है। नगरमें एक छापाखाना है। जिला भरके आवश्यक कागज-पत्र यहीं छपते हैं। यहाँ सबसे बड़ा कारखाना मशीनोंके सुधारने तथा पुरजोंके बदलनेका है।

आगे बढ़नेपर सड़कके दोनों ओर दूर तक बाग-ही-बाग दिखलाई देने लगे। मैंने जलपानमें अमरूद और बेरके टुकड़े खाये। एक-एक बेर एक-एक छटाँकके थे, तिसमें तारीफ यह कि गुठलीका पता नहीं। अमरूदोंमें भी सारा फल ढूँढ़नेपर कहीं एक बीज मिल पाता था। मिठास और सुगन्धके लिए क्या कहना है? विश्वामित्रने बताया, यह फल भी वैसे ही हो॰ हैं' अब घटिया वस्तु पैदा ही नहीं की जाती। यह सारा बाग बेर-ग्रामका था। इस ग्राममें यही काम होता है। फल बारहों मास होते रहते हैं, अतः लोगोंको काम भी सदा मिलता रहता है। दूसरी तरफ इस ग्राममें जामुनका भी बाग है। इसमें भी बरही की भाँति जादू किया गया है। अर्थात् आकार बहुत बड़ा; मिठास-सुवास अनूप; किन्तु गुठली का पता एहीं।

बागोंके बाद एक बार फिर खेत दिखलाई देने लगे। कितने ही खेतोंकी फसल तो कट गई थी; किन्तु ऐसे भी खेत थे, जिनमें कोसों फलियोंसे लदी सरसों थी। मालूम हुआ, तेलग्राम है। यहाँ इन खेतोंमें पहले तिल्ली उत्पन्न की जाती है, पीछे सरसों बो दी जाती है। यहाँ तेल निकालनेका भारी कारखाना है। खाने तथा सिरमें लगाने का तेल प्रदान करना यहाँ वालोंका काम है। मैंने कहा—तब तो चाहे बिजली ही से काम क्यों न किया जाता हो, किन्तु तेलसे कपड़े तो अवश्य रँगजाते होंगे। विश्वामित्रने कहा—नहीं, पहले तो काम करनेके वक्तकी पोशाक ही सबकी दूसरी होती है; दूसरे, काम भी दूर-ही दूरसे करना होता

है। सभी काम तो मशीन और नल करते हैं। इन तेलोंके ले जानेवाली बहुत-सी गाड़ियाँ भी मैंने स्टेशन पर देखीं, जो पुराने समयके मिट्टीके तेलकी गाड़ियोंसे बहुत कुछ मिलती-जुलती थीं। मैंने पूछा—सुगंधित तेल तो यहाँ नहीं बनता होगा? इसपर बतलाया गया कि सुगंधित तेलोंके कारखाने गाजीपुर, कन्नौज आदि नगरोंमें हैं। वहाँ आस-पास कोसों दूर तक इसके लिए फूलोंहीकी खेती होती है। तिल वहाँ दूसरे स्थानोंसे जाता है, जिससे वहाँके लोग तेल तैयार करते हैं। ऐसे ही मालूम हुआ, साबुन तैयार करनेके ग्राम हैं, जहाँ साबुन-ही-साबुन तैयार किया जाता है।

अगले स्टेशनपर अँचार-ग्राम लिखा दिखाई पड़ा। यहाँ अंचार और मुरब्बेके सिवाय कोई काम ही नहीं होता। अँचारके लिए फल, तेल; इसी प्रकार मुरब्बोंके लिए अपेक्षित सामग्रियाँ उन-उन चीजोंके ग्रामोंसे आती हैं। यहाँ वाले मशीनोंसे फलोंको काट, सुखा-पकाकर, अँचार तैयार करके अपने बड़े गोदाममें चीनी मिट्टीके बड़े-बड़े हौजोंमें रखते हैं। जब खाने लायक हो जाता है तो फिर जगह-जगह उसी प्रकार सावधानीपूर्वक ले जानेवाली गाड़ियोंमें भेजा जाता है। यहाँके लोग अँचार बनानेकी विद्यामें बड़े पटु हैं। उनको इस विषयकी विशेष शिक्षा मिलती है। कटहल, बड़हल, आम, जामुन, आँवला, कदम्ब आदि सब चीजोंका अँचार बनता है। इन वस्तुओंके उत्पन्न करनेवाले अलग-अलग ग्राम हैं। और सभी वस्तुओंके आकार-प्रकार, गुणोंमें विज्ञानने आश्चर्य-जनक परिवर्तन कर दिया है।

आगे हमें सड़कके किनारे दर्जी-ग्रामके अतिरिक्त दाल-ग्राम पड़ा। दाल-ग्राममें वर्षाकी फसलमें खेतोंमें उड़द, मूँग और जाड़ेमें अरहर पैदा की जाती है। इससे यहाँ दाल बनानेका बड़ा भारी कारखाना है। बाकी सब ढंग अन्य ग्रामों-सा ही है। इसके बाद कई एक गाँव मिले, लेकिन सबमें कलमी आमों तथा लीचियोंका बाग ही था। यह बागोंका सिल-सिला मुजफ्फरपुर होते गंगाके किनारे तक लगातार चला गया था।

फलोंके रूप-गुणमें तो आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ ही है, साथ ही फसल बारहों मास तैयार होती रहती है। कितने ही बागोंके वृक्ष सालमें दो बार फल देते हैं। लीची और आमके फलोंमें गुठली जब बहुत छोटी-छोटी देखी जाती है, ऐसे भी फल तैयार किये जाते हैं, जिसमें गुठली एकदम नहीं होती। सारा बिहार एक तरह आमों और लीचियों का बाग है। अंग, मगध, विदेह इसके तीनों प्रदेशोंमें सबसे अधिक पैदावार इन्हीं दो फलोंकी है। यह फल यहाँसे भारतमें ही नहीं, यूरोप, अमेरिका तथा एशियाके सभी भागोंमें भेजे जाते हैं। बर्फकी गाड़ियों में वह इस प्रकार भेजे जाते हैं कि महीनों रखने पर भी नहीं बिगड़ते। आमोंका आमरस भी तैयार किया जाता है, और उसके बनाने और रखनेकी ऐसी क्रिया और प्रबन्ध है कि खानेपर ताजे आमोंका स्वाद आता है।

दाल-ग्रामसे कुछ ही आगे आये थे कि अँधेरा हो गया। फिर मैं कुछ आगेके ग्रामोंकी बात पूछता और सुनता रहा। आठ बजेके भोजनको समाप्तकर थोड़ी देर वार्तालाप किया। अब सारी ट्रेन बिजलीके प्रकाशसे जगमगा रही थी। इसके बाद मैं सो गया। चार बजेका समय था, जब हमारी गाड़ी गंगाका पुल पार करने लगी। हमने अब मगधमें प्रवेश किया। यह पटना देवानाम्पिय पियदस्सी राजाकी पुरी आई। मैंने एक बार जो अपनी यात्राके अब तकके दृश्यको अपने सामने फिर रखा, तो विचार हुआ, अबके लोग बड़े चतुर हैं। पहलेका प्रत्येक आदमी चाहता था कि संसारकी सभी वस्तुयें वही पैदा कर ले। इस प्रकार एक ही गाँव अपनी आवश्यक सभी सामग्रियोंको पैदा करनेकी कोशिश करता था। अब तो एक गाँवके हजारों आदमी एक ही चीज पैदा करते हैं। दर्जी-ग्राम कपड़ा तैयार करनेवाले ग्रामोंसे कपड़ा लेकर स्त्री-पुरुष-बच्चोंके लिए तरह-तरहके नापके वस्त्र तैयार करता और आई हुई माँगोंके अनुसार वहाँ-वहाँ रवाना करता है। उसके कुछ आदमियोंको रसोई बनाना पड़ता है, किन्तु उसे न अनाज पैदा करनेसे सम्बन्ध, न आटे-चावलके भावसे

प्रयोजन, न लाठीसे गाय-भैंस चरानेका काम; न आलू-बैंगन-गोभी बोनेसे मतलब; न ऊख पेर कर चीनी-गुड़ तैयार करनेका प्रयास; अर्थात् उसके लिए अपेक्षित अन्य सभी वस्तुयें दूसरे ग्राम तैयार करते हैं, जिनकी कि कपड़ोंकी आवश्यकता वह पूरा करता है। इकट्ठा बहुत-सी चीजें कलों-द्वारा तैयार करनेमें श्रम और समय कम लगता है। कहाँ पहले लोगोंके दिन-रात लगे रहने पर वही मसल थी कि यदि सिर ढँका तो पैर नंगा, यदि पैर ढँका तो सिर नंगा। किन्तु यहाँ हफ्तेमें पाँच दिन और रोज चार ही घण्टे प्रत्येक व्यक्तिको काम करना पड़ता है और इतनेहीमें स्वर्ग-सुख भोगने की सभी वस्तुयें प्रस्तुत हो जाती हैं। पहलेकी सारी जिन्दगी जिन्दगीहीके लिए थी। आदमी रात-दिन लगे रहकर तब अपने और अपने बाल-बच्चोंका पेट भर, तन ढाँक, जीवन रक्षा करता था, दूसरे कामके लिए मुश्किलसे समय निकलता था। यहाँ मैं उन आदमियों को नहीं गिनता हूँ, जिनका जीवन परायेकी मेहनत पर निर्भर था। उस समय मनुष्य कैसे अपने जीवनका कोई उच्च लक्ष्य रख सकता था, जबकि इस प्रकारकी आपत्तियों में उसे पड़ा रहना पड़ता था? किन्तु अब तो अवस्था ही दूसरी हो गई है। ४ घण्टे काम; बाकी २० घंटे सोना, पढ़ना, नृत्य-गान, सत्संग, विद्याव्यसन, परोपकार-चिन्तन, साहित्य-सेवा आदि सभी कामोंके लिए बचा हुआ है। इतनी सुखकी सामग्रियोंसे घिरे रहने पर भी उसके लिये अपने जीवनका सर्वाङ्ग अर्पण नहीं करना पड़ता। प्रबन्ध कैसा है? वर्षमें नौ मास अपना कर्त्तव्य पालन करके आप तीन मास सैर-सपाटा भी कर सकते हैं; चाहे पृथ्वीके किसी भागमें भी स्वतंत्रता-पूर्वक घरकी भाँति सानन्द रेल, जहाज या विमान-द्वारा विचर आ सकते हैं। अपने-अपने कार्यक्षेत्रके चुननेमें भी स्वतंत्रता है। केवल योग्यता होनी चाहिये। फिर भारतीय अंगूरकी खेतीका जानकार फ्रान्समें जाकर बस सकता, रह सकता है।

पटनामें नालन्दा जाने वाली गाड़ी तैयार मिली। हमारी गाड़ीकी

यहीं तक पहुँच थी। अन्य साथियोंसे विदा हो मैं और विश्वामित्र नालन्दा की गाड़ी पर जा बैठे।

नालन्दामें स्वागत

अब हमारी गाड़ी दनदनाती नालन्दाके पास जा रही थी। प्रातः-कालका समय था। भगवात भुवन-ज्योति यद्यपि अभी पूर्वके क्षितिजपर दिखाई नहीं पड़ते थे, किन्तु उनके आनेका संवाद उषाकालीन रक्तिमा दे रही थी। दूर कृषि-विद्यालयके वृक्षोंके ऊपरसे यह ललिमा वैसे ही दीख पड़ती थी, जैसे अंधेरी रात्रिमें दूरसे दिखलाती दावाग्नि। मानों भास्कर संसारके अन्धकारके दग्ध करनेमें अभी रुके हैं। यद्यपि अभी उनका साक्षात् आगमन नहीं हुआ, किन्तु उनकी अवाईकी सूचना पाये हुए-से पक्षिगण इधर-उधर उड़-उड़कर बैठ रहे हैं। रेल-लाइनके दोनों ओर फलोंके भारसे लटके हुए चनोंके पौधे दूर तक दिखलाई पड़ते हैं, जिनमें कहीं-कहीं पतली-पतली खेतोंमें जाने वाली लाइनें दिखलाई पड़ जाती हैं। मैंने कहा, और तो सब हैं, किन्तु आजके लोगोंको चनेका होला तो न मुवस्सर होता होगा, किन्तु पीछे मेरा यह विचार भी गलत निकला। मैंने स्वयं पीछे होला खाया था। मेरे साथी भी शौचादिसे निवृत्त हो बैठे थे। गाड़ीमें कहीं कुछ लोग पुस्तक पढ़ते हुए दीख पड़ते थे—कुछ लोग गा रहे थे, बाकी लोग भी चुपचाप अपने स्थानों पर बैठे अपने-अपने विचारोंमें मग्न थे। उस भीतरी सन्नाटेमें वही गाड़ीकी घड़घड़ाहट कानोंमें आ रही थी। मैं भी शौचादिसे निवृत्त हो, स्नान-कोठरीसे स्नान करके आ बैठा। अब हमारी गाड़ी विद्यालय-भूमिमें प्रविष्ट हुई। चारों ओर दूर तक खेतोंसे घिरा एक तीनतल्ला सुन्दर मकान है। उससे थोड़ी दूरपर एक ऊँचा चार महलका मकान है; जिसमें चारों ओरके मकानोंके बीचमें एक बड़ा भारी चौखुटा आँगन है। मकानके बाहर फूलोंकी शोभा निराली है। विश्वामित्रने बतलाया, वह कृषि-विद्यालय है, और यह उसका छात्रावास। ऐसे ही और भी थोड़ी-थोड़ी दूर पर विद्यालय मिलते गये। आखिर ठीक साढ़े छः बजे गाड़ी नालन्दाके बड़े स्टेशन पर पहुँची। नालन्दाका

घेरा बहुत भारी है। यहाँ चार स्टेशन हैं, जो समीपस्थ विद्यालय के नामसे पुकारे जाते हैं। इस बड़े स्टेशनका नाम है नालन्दा प्रधान।

प्रत्येक ट्रेनमें अन्य प्रबन्धोंके साथ बे-तारका टेलीफोन भी लगा रहता है। पिछले स्टेशन पर भी विश्वामित्रने हमारे आनेकी सूचना आचार्यको दे दी थी। हमारी गाड़ीके स्टेशन पर पहुँचते ही विद्यालयने धर्म-सूचनाका बिगुल दिया। पटनामें चढ़ते वक्त हम लोग दरवाजेके पास ही बैठे थे। अतः गाड़ी खड़ी होते ही उतर पड़े। प्लेटफार्म पर आचार्य तथा पचास प्रधान-प्रधान उपाध्याय खड़े थे। मेरे उतरते ही सबने 'स्वागत' किया, और गलेमें फूलोंकी माला डाली। स्टेशनसे बाहर यद्यपि मोटर खड़ी थी, किन्तु मैंने कहा, इतनी दूरके लिए इसकी आवश्यकता नहीं; दूसरे मार्गमें खड़े बच्चोंसे मिलनेमें भी कठिनाई उपस्थित होगी। अब हम लोग 'वसुबन्धु' भवनकी ओर चले। सड़कके दोनों ओर पाँतीमें विद्यालयके छात्र खड़े थे। यह सब बड़ी श्रेणियोंके छात्र थे। एक-एक विद्यालयके छात्रोंकी पंक्ति एक ही जगह थी। पहुँचनेके साथ ही उस-उस विद्यालयके प्रधान आचार्यका परिचय कराया जाता था। इस प्रकार आखिर 'वसु-बन्धु' भवनका बड़ा हाल आ गया।

'वसुबन्धु' भवनकी शोभा अपूर्व है। चारों ओर दूर तक घासका हरा मैदान है। मकान बहुत ऊँचा, सफेद संगमरमरका-सा दीखता है। इसके चारों ओर संगमरमरकी छतरियोंके नीचे पुराने और बीते हुए कितने ही आचार्यों एवं प्रसिद्ध महापुरुषोंकी मूर्तियाँ हैं। मुझे यह देखकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि यहाँ विद्याव्रतकी भी एक विशाल मूर्ति स्थापित है। यह वही यशस्वी पुरुष हैं, जिन्होंने नालन्दाके पुनरुद्धार करते वक्त सर्वप्रथम अपना सर्वस्व दिया था। सब स्थावर और जंगम सम्पत्ति उनकी पच्चीस लाखकी थी। इन्हें कोई सन्तान न थी। इन्होंने विद्यालयहीको अपना पुत्र बना, सर्वस्व अर्पण कर दिया। विद्याव्रतने सचमुच उस समय असाधारण साहस और स्वार्थ-त्यागका परिचय दिया था। मुझे स्मरण है कि जिस समय मेरे हृदयमें विद्यालयके पुनरुद्धारका विचार उठा, तो

स्वयं इस प्रकारका भी सन्देह उठता था; कि क्या मेरे ऐसा अकिंचन, अयोग्य व्यक्ति ऐसे भारी कार्यको उठा सकता है। मेरी हार्दिक इच्छा होती थी, कोई इसके सदृश ही महान् पुरुष इस कामको अपने हाथमें लेता तो मुझे भी उसके पीछे चलकर सब प्रकारसे सेवार्थ तैयार रहनेमें कितना आनन्द होता। किन्तु दुर्भाग्यसे महान् पुरुषको इन महत्वपूर्ण कार्यका स्मरण न था, अथवा उपेक्षा थी। यही देख और सर्वथा अपनी अयोग्यता जानकर भी मैंने इस काममें हाथ डालही दिया। किन्तु इस काममें अनेक विद्वानोंके अतिरिक्त बहुत धनकी भी आवश्यकता थी। धनवालोंका अभाव न था, किन्तु उनमेंसे बहुत तो इसका महत्त्व ही नहीं समझते थे। जो समझ भी सकते थे, उन्हें ऐसा होनेपर विश्वास न था। अन्य जगहोंमें धनादि प्रदान करनेसे पदवियों और खिताबोंकी वृष्टिकी सम्भावना थी, वह यहाँ न थी' फिर ऐसी अवस्थामें कौन धनपात्र आगे बढ़ता ?

मैंने बाल्यहीसे यद्यपि भिक्षु-आश्रम ग्रहण किया था, किन्तु भिक्षा माँगनेका अभ्यास न था। यह और भी एक कठिनाई थी। खैर, किसी-किसी तरह मैंने अपने आपको इसके लिए तैयार किया। उत्साही पुरुषों-ने मेरी झोलीमें पड़ना आरम्भ किया। किन्तु फिर वही कठिनाई। यह सभी उत्साही पुरुष ऐसे थे, जो अपने उत्साहके बराबर धन देनेकी सामर्थ्य न रखते थे। तो भी उनके उत्साहसे मुझे बड़ा बल मिलता था। ऐसे समयमें विद्याव्रतके हृदयमें प्रेरणा हुई। यह मेरे लिए अपरिचित व्यक्ति थे। इसके पूर्व कभी इन्होंने ऐसे कार्यों में हाथ भी न डाला था। परन्तु, न जाने हृदयमें एकदम क्या आया कि इन्होंने अपने सर्वस्व का दानपत्र मेरे पास भेज दिया। आज शताब्दियोंके ऊपरकी बात मेरे लिये कलकी-सी है। मेरे नेत्रोंके सामने अब भी मेरे वह सहयोगी फिर रहे हैं, जिन्होंने अपने जीवनको विद्यालयकी आधार-शिलाके नीचे डाला था। उस समयके हम लोगोंने उनका सम्मान किया—किन्तु उतना नहीं, जितने के वे पात्र थे।

वसुबन्धु-भवन अर्द्धचन्द्राकार है। इसमें सवा लाख आदमियोंके बैठनेका स्थान है। बैठनेकी गैलरियाँ रंग-मंचके सम्मुखसे आरम्भ हो धीरे-धीरे ऊँची होती चली जाती हैं। यद्यपि वह रंग-मंचके सम्मुख अर्द्धचन्द्राकार दूर तक चली गई हैं, किन्तु इस प्रकार बनाई गई हैं कि सभी दूर और नजदीकके आदमी रंग-मंचको देख सकते हैं। इन गैलरियों के नीचे-ऊपर तीन तहें हैं। बैठनेके लिये लम्बी-लम्बी कुर्सियाँ हैं। स्थान-स्थान पर बिजली के लैम्प और पंखे लगे हुए हैं। रंग-मंचकी धीमी-सी आवाजको भी सबसे आखिर वाले श्रोता तकके कानमें बराबर पहुँचनेके लिए बीच-बीचमें शब्द-प्रसारक यंत्र लगे हुए हैं। यह शब्दोंको श्रोतव्य बनाते हैं। प्रत्येक तलमें वायु और सूर्य प्रकाशके आने-जानेके लिए पर्याप्त रोशनदान और वातायन हैं। दीवारोंपर भूमंडलके प्राचीन और अर्वाचीन महापुरुषोंके चित्र और सुनहरे अक्षरोंमें सूक्तियाँ लगी हुई हैं। इन चित्रोंमें अधिकांश विद्यालयके ही छात्र और अध्यापकोंके बनाये हुये हैं। छात्र और छात्राओं दोनोंके बैठनेके लिये भवनमें स्थान हैं। बैठनेकी जगहों पर पहुँचनेके लिये सीढ़ियाँ बाहरसे लगी हुई हैं, केवल रंग-मंचपर जानेका मार्ग सामने पड़ता है। रंग-मंचकी बगलमें नेपथ्य-शाला है, जहाँ नाटक करने के समय पात्र नेपथ्य-परिवर्तन करते हैं।

विद्यालय-परिवार समूह-रूपसे मेरा स्वागत करनेके लिये भवनमें बैठा हुआ था। इसलिये आचार्यने वहाँ चलनेके लिए मुझसे कहा। अब जलपानका समय समीप था, इसलिये रंग-मंचपर दो शब्दोंमें विद्यालयकी ओरसे अभिनन्दन करते हुए उन्होंने मेरे गलेमें फूलोंका हार डाला। मैंने भी दो ही शब्दोंमें इसके लिये कृतज्ञता प्रकट की; और कहा कि, अब तो मैं फिर अपने प्यारे विद्यालयके लिये आ ही गया हूँ।

वहाँसे मैं सीधे विद्यालयके अतिथि-विश्राममें ले जाया गया। यह अतिथि-विश्राम बहुत बड़ा पाँच तलोंका मकान है। इसमें हजार आद-

मियोंके आरामसे ठहरनेका स्थान है। कोठरी आदि सबका प्रबन्ध वैसा ही था, जैसा कि सेवग्राममें, किन्तु यह एक बहुत लम्बे-चौड़े मैदानवाले आँगनके चारों ओर बना हुआ है। ऊपर चढ़नेके लिए बिजलीके झूले हैं, जिनपर बैठकर आदमी अपने विश्राम-स्थानके तलपर शीघ्र जा पहुँचता है। बिजलीके पंखों और दीपकों, तथा पानीके नलोंका पूरा प्रबन्ध है। अतिथियोंकी सेवा और आवभगतके लिये बहुत-से पुरुष और महिलायें नियुक्त हैं। अतिथियोंके लिए यहीं एक बड़ी पाठशाला और भोजन-शाला है। तैरकर स्नान करनेके लिए एक बड़ा कुण्ड भी है। उपयुक्त पुस्तकोंका एक पुस्तकालय और अस्वस्थ अतिथियोंके लिए पृथक् चिकित्सालय भी है। इस प्रकार यह अतिथियोंका अच्छा खासा गाँव है। अतिथि विश्रामके द्वार पर ट्राम हैं, जो राजगृह तक फैले हुये भिन्न-भिन्न कालेजों तक चली गई हैं। अतिथि जिस कालेज को जाना चाहते हैं, बस, दरवाजे ही पर वहाँ जानेवाली ट्रामपर बैठ जाते हैं।

विद्यालयकी इस प्रकारकी श्री-वृद्धि देखकर मेरे आनन्दकी सीमा न थी। मेरे समयसे अब बहुत फर्क हो चुका था। विश्राम-स्थानपर पहुँच कर वहाँ जलपानके लिए सब कुछ तैयार पाया। मैंने विश्वामित्र, आचार्य वसिष्ठ तथा अन्य प्रधान अध्यापक-अध्यापिकाओंके साथ जलपान किया। जलपानके बाद आजका प्रोग्राम शिशु-कक्षा देखना निश्चित हुआ।

शिक्षा-पद्धति : शिशु-कक्षा

दूसरे अध्यापक तो जलपानके बाद अपने-अपने स्थान पर चले गये थे; सिर्फ मैं, विश्वामित्र, आचार्य वसिष्ठ और शिशु-कक्षाकी प्रधाना-ध्यापिका एवं विद्यालयकी उपाचार्या वीरा साथ चलनेको रह गईं थीं। बालकों और बालिकाओंकी कक्षामें सूचना दी जा चुकी थी। निकलते वक्त निश्चय हुआ, कि पहले शिशु-कक्षामें चलना चाहिये। द्वारसे निकल कर हम लोग ट्रामपर जा बैठे। शिशु-कक्षा यहाँसे एक कोसपर

थी। रास्तेमें जहाँ-तहाँ मैदान, बाग और अन्य-अन्य विषयोंके विद्यालय भी पड़े। आज विद्यालयमें छुट्टीका दिन था। बालक-बालिकायें जहाँ-तहाँ घूमते तथा बैठे हुए दीख पड़ते थे। हमारी गाड़ीमें और भी कितने ही लोग चढ़े हुए थे। यह लोग प्रायः सब विद्यालयके अतिथि थे; जिनमेंसे कोई अपने लड़के, लड़की या किसी सम्बन्धीसे मिलने आया था, कोई ऐसे ही अपनी वार्षिक छुट्टियोंमें मनोरंजनके लिए आया हुआ था। कोई किसी विद्या-सम्बन्धी जिज्ञासासे आया था।

आखिर ट्राम बालक-बालिकाओंके उद्यानके मुख्य द्वारपर पहुँच गई, हम लोग नीचे उतरे। अध्यापिका-वर्गने द्वारपर स्वागत किया। द्वार तथा उसकी सीधमें तीन-तल्ला मकान स्वच्छता-सुन्दरतासे परिपूर्ण है। भीतर मकानोंके अतिरिक्त एक बड़ा भारी बाग वैसा ही लगा हुआ है, जैसाकि सेबग्रामके शिशु-उद्यानमें; फर्क यही है, कि बालकोंकी संख्या अधिक होनेसे यह एक स्वतन्त्र ग्राम-सा मालूम होता है। सोनेके कमरोंके अतिरिक्त पाकशाला, भोजनागार, चिकित्सालय तथा भाण्डार-घर हैं। भीतर बच्चोंको खुले पानीमें तैरने और नहानेके लिए बहते पानीका एक पक्का कुण्ड है, जिसमें डुबाव पानी नहीं रहता। जगह-जगह बागमें फव्वारे और तलगृह बने हुए हैं। खेलनेके लिए हरी घासों के बड़े-बड़े मैदान हैं। जाड़ेके दिनोंमें स्नानके लिए एक बड़े मकानके भीतर गर्म पानीका कुण्ड है।

शिक्षा देनेवाली सभी महिलायें ही हैं। शिशु-कक्षामें प्रत्येक बालक-बालिकाको तीन वर्ष रहना पड़ता है। पहले बतलाया जा चुका है, कि राष्ट्रीय नियमके अनुसार सभी बालक-बालिकायें तीन वर्षकी अवस्थाके बाद माता-पिता से अलग करके विद्यालयोंमें भेज दिये जाते हैं। सम्पूर्ण शिक्षा तीन कक्षाओंमें विभक्त है। शिशु-कक्षा चौथे वर्षकी अवस्थाके आरम्भ होते ही आरम्भ होकर छठें वर्षकी समाप्तिके साथ समाप्त होती है। बाल-कक्षा ७वें से शुरू होकर १४वें वर्षमें समाप्त होती है। इसके बाद तरुण-कक्षा १५ से २०वें वर्ष तक होती है। शिशु-कक्षामें शिक्षा

प्रायः एक-सी होती है। पुस्तकों द्वारा शिक्षाका अधिक व्यवहार नहीं है, यद्यपि छात्र इसी कक्षामें अक्षर और अंकको पहचानने लगते हैं। शिशु-कक्षाके अन्तिम वर्षमें उसे लिखना-पढ़ना भी पड़ता है, किन्तु ज्यादातर शिक्षा मौखिक होती है। प्रत्येक शिक्षणीय विषयको मनोरंजक बनाकर इस प्रकार बच्चोंके सम्मुख रक्खा जाता है, कि वे स्वयं उसको जाननेके लिए उत्कंठित हो जाते हैं। जिस विषयमें जिस बच्चेकी उत्सुकता अधिक देखी जाती है, उसीकी ओर अध्यापिका-वर्ग भी उसका अधिक ध्यान दिलाता है। जितना ध्यान बालकोंकी ज्ञान-वृद्धिकी ओर दिया जाता है, उतना ही उनकी शारीरिक उन्नतिका भी ख्याल रक्खा जाता है। यद्यपि छात्रोंके कुश्तीके लिए छप्परोंके नीचे कई-एक अखाड़े बने हुए हैं, जहाँ नियत समय पर यह छोटे-छोटे पहलवान ताल ठोंक-ठोंक, अपने करतब दिखलाते हैं, किन्तु अधिकतर दौड़-धूपके खेलों द्वारा इन्हें दृढ़ और परिश्रमी बनाया जाता है। कबड्डी, फुटबाल आदि कई प्रकारके खेल होते हैं। इन खेलोंके नियम बतलाकर उन्हें स्वयं प्रबन्ध करनेको छोड़ दिया जाता है। अध्यापिका-वर्ग केवल मार्ग दिखलाता है।

अपने कार्योंमें अधिक योग्यता प्रदर्शित करने पर बालक अपनी श्रेणीमें ऊपरके नम्बरमें गिने जाने लगते हैं। उनकी योग्यताका पुरस्कार यह तथा गुरुजनोंकी शाबाशी है। वस्तु आदिके रूपमें दूसरे प्रकारके पारितोषिक नहीं दिये जाते। दस-दस बच्चोंकी टोली होती है, जिसमें एकको वह अपना नायक स्वयं चुनते हैं। एक-एक टोलीके लिए एक-एक सोनेका कमरा है।

रात्रिमें जब बालक-बालिकायें अपने-अपने बिस्तरों पर लेटते हैं, तो अध्यापिकायें इतिहासके प्रसिद्ध-प्रसिद्ध पुरुषोंकी कथायें सुनाती हैं। इन कथाओंमें सन्-तारीख नहीं रहते। हाँ, यह बता दिया जाता है, कि अशोक बुद्धके बाद हुए थे—चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य उनके भी बाद। कथाओंकी भाषा सरल, तथा भाव वही लिये जाते हैं, जिन्हें बालक आसानीसे समझ सकें। वह कथायें इतिहास, भ्रमण और विज्ञान आदि

सभीके सम्बन्धमें हुआ करती हैं। कभी-कभी छात्र इन्हें स्वयं भी दुहराया करते हैं। कभी-कभी अध्यापिका और विद्यार्थी-वर्ग कोई-कोई गीत भी मिलकर गाते हैं। बालकोंको स्वास्थ्य तथा स्वच्छता-सम्बन्धी नियम भी बड़े ध्यानपूर्वक बतलाये जाते हैं। उन्हें अपने ही नहीं, अपने आस-पास को स्वच्छ रखने-रखवानेकी शिक्षा दी जाती है। उन्हें भली प्रकार बतला दिया जाता है, कि केवल तुम्हारी ही स्वच्छता पर्याप्त नहीं है, तुम्हारे अड़ोस-पड़ोसमें भी स्वच्छता होनी चाहिये। अपने यहाँ सफाई करके कभी अपने कूड़ा-कर्कटको दूसरेके यहाँ न फेंक दो। किसी जगह इस प्रकार कुछ पड़ा हुआ देखकर स्वयं उसे हटा दो या उपयुक्त व्यक्तिको उसकी सूचना दे दो। उन्हें बड़ोंका आदर और छोटोंसे प्रेम-भाव रखना सिखला दिया जाता है। बालक ससारके लिये जीवन उत्सर्ग करनेवाले पुरुषोंकी कथाओंको बड़े प्रेमसे सुनते हैं। अध्यापिकायें उन्हें बड़े मधुर और हृदय-ग्राहक शब्दोंमें कहती हैं। बालक कितनी ही बार सुनते-सुनते करुणाभिभूत हो आँसू बहाते देखे जाते हैं।

बड़ी-बड़ी मूर्तियां और चित्रोंके अतिरिक्त महापुरुषोंकी जीवन-घटनाओंके फिल्म बोलते बाइस्कोपों द्वारा भी दिखलाये जाते हैं। बालक इन चलती-फिरती बोलती तस्वीरोंको बड़े प्रेमसे देखते-सुनते हैं। खेलमें बालक घर बनाते; फुलवाड़ी लगाते और पंचायत करते हैं। प्रसिद्ध नक्षत्रों और राशियोंका उन्हें परिचय कराके उनकी दूरी आदिके सम्बन्धमें मनोरंजन कथायें सुनाई जाती हैं। पृथ्वी तथा सौर परिवारके अन्य ग्रहों, उपग्रहोंका खगोलमें भ्रमण उन्हें दिखाया जाता है। इन कथाओंसे मनुष्य-मात्रके प्रति भ्रातृत्व उनको हृदयस्थ करा दिया जाता है।

मृत पशु-पक्षियोंके संग्रहालय द्वारा भी यहाँ बहुत-सी प्राणिशास्त्रकी बातें बतलाई जाती हैं। कितने ही समय बालकोंको प्राणिशास्त्रीय विद्यालय के जन्तु-संग्रहालय में ले जाया जाता है। वहाँ उन्हें जीवित प्राणी दिखलाये जाते हैं। यद्यपि इस प्रकार विद्याके अनेक विभागोंमें बालकोंके प्रवेशका मार्ग खोला जाता है, किन्तु यह पूरी तरहसे ध्यानमें रक्खा जाता है कि

बालक उसमें मानसिक श्रम न अनुभव कर। इन्हीं मनोरंजक रीतियोंसे गणितका आरंभिक ज्ञान भी उन्हें करा दिया जाता है। व्याकरणका नाम भी न लेकर भाषाके शुद्धाशुद्धका भी इन तीन वर्षोंमें पर्याप्त ज्ञान करा दिया जाता है। कथाओंकी मनोरंजकताके तारतम्यसे उन्हें भीतर ही भीतर भाषाकी सरसता और नीरसताके पहचाननेका अभ्यास भी हो जाता है। शिशु-उद्यानके भीतर बालकोंकी अपनी गवर्नमेंट है। बालक इसके कार्य-निर्वाहके समय अनेक अद्भुत बुद्धि-चातुर्य प्रदर्शित करते हैं। शिशु-कक्षाके छात्रोंकी पोशाक जाँघिया, मोजा, जूता और कोट या कुर्ता है। जाड़ेके दिनों में सिर ढाँकनेका गुलूबन्द भी पहनते हैं। कहीं किसी प्रकारके आभूषणका वहाँ नाम नहीं होता, किन्तु वस्त्र ऋतुके अनुकूल तथा सुन्दर होते हैं। इस पोशाकमें बालक-बालिकायें बड़े फुर्तीले दीख पड़ते हैं।

हमारे जानेपर अपने-अपने नायकोंको सामने किये हुए सब टोलियाँ खड़ी थीं, शिशु-पार्लियामेंटके प्रधान और मन्त्रियोंने शिशु-समाजकी ओरसे हमारा स्वागत किया। मेरे कहनेपर अखाड़ेका खेल देखना निश्चित हुआ। बालकोंने स्वयं अपनी-अपनी जोड़ी चुनी। ऐसी दस जोड़ियोंको मैंने निश्चय किया। इनमें प्रथम, द्वितीय और तृतीय सभी वर्षोंके बालक थे। अखाड़ेपर पहुँचकर पहली जोड़ी प्रथम वर्षके लड़कोंकी छोड़ी गई। इनका नाम कृष्ण और इब्राहीम था। अखाड़ेमें पहुंचनेसे पहले ही इन्होंने कपड़ा उतार कुश्तीका जाँघिया चढ़ाया। पहले तो दोनों दूरसे दाँव तकते रहे। आखिर गुत्थमगुत्थी हो गई। लडनेके कायदे भी बतलाये गये हैं कि सफल होनेपर भी किन-किन अंगों पर चोट करने या पकड़नेसे हार हो जाती है। इब्राहीमने कृष्णको आखिर नीचे कर हीं दिया, किन्तु कृष्ण भी एक था। इब्राहीम चित करते-करते हार गया, तो भी वह चित न हुआ। जब वह इसमें लगा हुआ था, तभी अवसर देख कृष्णने ऐसी झपट मारी कि इब्राहीम चारों खाने चित। दर्शक शिशु-समाजने आनन्द-ध्वनि की। अब दोनों अलग-अलग खड़े हो गये। इब्राहीमने एक बार और अवसर देनेकी प्रार्थना की। कृष्णने कहा—भाई

इब्राहीम ! कोई परवाह नहीं। एक बार तो चित कर ही दिया है। यदि अबकी तुमने पछाड़ भी दिया; तो भी हम बराबर ही रहेंगे। अब दोनोंने फिर ताली बजा भिड़न्त शुरू की। अबकी इब्राहीमने सचमुच कृष्णको ले धरा। आखिर दोनोंकी जोड़ी बराबर गिनी गई। बादको और जोड़ियोंने भी एक-एक करके अपने-अपने करतब दिखाये। इसके बाद दौड़ और फुटबाल मैच हुआ। कुछ लड़कोंने तैराकी भी दिखलाई। अब हम लोग बागके उस ओर गये, जिधर महापुरुषों की मूर्तियाँ थीं। मैंने प्रथम वर्षके बालक ज्ञानसे पूछा—तुम्हें मालूम है, इनमें मार्क्स कौन हैं ? उसने झट जाकर हाथसे पकड़ बता दिया—यह हैं। तब मैंने पूछा—तुम इनके बारेमें क्या जानते हो ? उसने संक्षेपमें बालकोंके समझने योग्य कितनी ही घटनायें बतलाई। सारांश यह कि, इन्होंने मानवसेवाके लिए अनेक कष्ट सहे, किन्तु उसे न छोड़ा। एक बालिकासे फिर मैंने डार्विनके बारेमें पूछा। उसने भी हाथ रखकर डार्विनकी कथा कह डाली। इसी प्रकार वनस्पति और पशुओंके बारेमें भी प्रश्न किये। उत्तर बहुत सन्तोषजनक मिले। सबसे बढ़कर बात यह देखी कि बालकोंमें किसी प्रकारका भय या संकोच न था। बालकोंके सोनेके कमरे देखकर भोजनागार और चिकित्सालय आदिको भी देखा। आज मध्याह्न भोजन भी शिशु-मंडलीही में हुआ।

हमने बड़े प्रेमसे उनके गीत और किस्से सुने।

इनकी शिक्षा हरी-हरी घासों, फल-फूलसे लदे वृक्षों और पशु-पक्षियों के संग्राहलयोंमें होती है। बालिकाओंकी स्वच्छता, सुन्दरता और निर्भीकता देखकर मैं कहता था, क्या इन्हींकी भाँति बीसवीं शताब्दीकी भी स्त्री-जाति थी। पुरुष-जातिने इनकी शक्तिको विकसित होनेसे रोक दिया था। उनको यह न मालूम था कि इससे उनकी अपनी भी हानि है। मैंने कहा—इन्हींमें आखिर उन अस्पृश्योंकी भी सन्तानें हैं, जिन्हें उस समय लोग यदि मनुष्य कहते थे, तो मानों बड़ी कृपा करते थे। अन्यथा उन्हें पशुओंसे भी बदतर समझा जाता था। कुत्ते को गोदमें बिठामें

संकोच न था, किन्तु मजाल क्या कि किस्मतके मारे वह पुरुष पासमें फटक सकें। ओह ! कितने करोड़ ऐसे मनुष्यके अमूल्य जीवन बरबाद कर दिये गये ? अन्यायका कुछ ठिकाना था ? उन अभागोंको गाँवमें कुआँ रहनेपर भी कुएँका पानी पीनेको नसीब न होता था। और दोषों के साथ उनपर सबसे बड़ा दोष यह बनाया जाता था कि वे मैला साफ करते हैं—वह मुर्दे पशुओंको ले जाते हैं, इत्यादि। किन्तु उन दोष-दर्शकोंको यह न सूझता था कि समाजकी ऐसी सेवाके लिए—जिसे कि करनेके लिये और लोग तैयार न थे, तथा जिसपर समाजकी सुस्थिति निर्भर है—उनका कृतज्ञ होना चाहिये, न कि उलटा उन्हें तिरस्कारका पात्र बनाना चाहिये। खैर ! वह भी एक स्वप्नका समय था, यद्यपि स्वप्न हजारों वर्षों लम्बा-चौड़ा था। आखिर मनुष्यों ने समझा—एक दूसरेको छोटा बनानेसे हमें स्वयं नीच बनना पड़ता है। संसार फिर उस स्वप्नको न देखे, उस नशे या मोह-निद्रामें न पड़े।

इस प्रकार आज शिशु-कक्षाका निरीक्षण समाप्त हुआ। अध्यापिकायें सभी उत्तम योग्यताकी हैं। साथिन वीरा जिस प्रकार कन्याओं के लिए आदर्श हैं, वैसे ही बालकोंके लिए सच्ची निर्माता माता हैं। सब देखकर प्रायः तीन बजे हमलोग अतिथि-विश्रामको लौट आये। कलके लिए बाल-कक्षाका देखना तय पाया। इसके बाद बहुत देर तक विद्यालयके दो शताब्दियोंके इतिहासके बारेमें वार्तालाप होता रहा।

शिक्षा-पद्धति : बाल-कक्षा

आज सबेरे ट्रामपर सवार हो हमलोग बाल-कक्षाकी ओर चले। यह और भी दूर, अर्थात् दो कोसपर थी। पहले कहे अनुसार बाल-कक्षा ८ वर्षकी अर्थात् ६ से १४ तककी है। इसमें दो-दो वर्षकी उपकक्षाएँ बनाई गई हैं, जिनके लिए पृथक्-पृथक् निवासोद्यान हैं। बाल-कक्षामें

सक्षेपसे साहित्य, गणित, भूगोल, व्याकरण, संगीत, आलेख्य, कृषि, गो-रक्षा आदि विषय हैं, किन्तु यह सभी प्रत्येक छात्रको पढ़ना आवश्यक नहीं है। विद्याओंकी ओर प्रलोभन द्वारा प्रवृत्ति कराकर जिधर बालकका स्वाभाविक रुझान नहीं देखा जाता, उधर बल नहीं दिया जाता। उदाहरणार्थ इस श्रेणीमें प्रविष्ट हो, तीसरेसे पाँचवें वर्ष तक प्रत्येक बालकको संस्कृत आदि किसी भाषाके सिखानेकी प्रथा है। इन भाषाओंके सिखानेका वातावरण इस प्रकार बनाया गया है (यह पहले सूचित किया गया है), जहाँ बालकको छोटे शिशुओंकी भाँति भाषा सीखनेकी अनुकूलता रहती है। जबर्दस्ती मस्तिष्क पर लादनेका प्रयत्न नहीं किया जाता। किन्तु देखने पर जब मालूम हो जाता है कि बालककी उधर रुचि नहीं है, तो फिर बल नहीं दिया जाता। बाल-कक्षामें दाखिल होनेके साथ ही बालकोंके उनके नित्य-कृत्य बतला दिये जाते हैं।

बाल-कक्षामें पहुँचते ही वहाँ भी अध्यापक-अध्यापिका-वर्ग तथा विद्यार्थी-समाजकी ओरसे हमारा स्वागत हुआ। सब बालक-बालिका श्रेणीसे खड़े थे। पोशाक सबकी जाँघिया और कुर्ता थी। जाड़ेमें सिर ढाँकनेके लिए गर्म वस्त्र एवं जूता मोजा भी मिलता है। एक-एक उपकक्षाका एक-एक गाँव बसा हुआ है, जहाँ भोजनालय, संस्थागारके अतिरिक्त भांडार भी रहता है। यहाँ भी तैरकर नहानेका कुण्ड है तथा अखाड़ों और खेलोंके मैदानोंका पूरा प्रबन्ध है। मकान तीन-महले हैं। ऊपर जानेके लिए बिजलीका झूला है। लिखने-पढ़ने, प्रकाश, पुस्तक रखने आदि सबका प्रबन्ध है। निद्रासे उठकर शौचादि जाना पाँच ही बजे होता है। स्नान आदिसे निवृत्त होकर बालक कलेवा करते हैं। भोजनके लिए जो चार समय नियत हैं, वही बाल-कक्षाके लिए भी हैं—शिशु-कक्षाकी भाँति छः बार नहीं। अध्यापनके लिए यहाँ पृथक् पाठशाला है। बैठनेके लिए बेंचें हैं।

यद्यपि बाल-कक्षासे नियमानुसार पढ़ाई शुरू होती है, तो भी विषयको रुचिकर बनानेकी ओर खूब ध्यान रहता है। इस समय मनोहर भाषामें

लिखी पुस्तकों, नाटकों और बाइस्कोपों द्वारा इतिहासकी शिक्षाको भी जारी रक्खा जाता है। नाटकोंका बालक स्वयं अभिनय करते हैं। विज्ञान और ज्योतिष-सम्बन्धी जिज्ञासाओंकी पूर्तिके लिए उत्कंठा होनेपर दूर-वीक्षण, एवं प्रयोगशालाओंका भी सहारा लिया जाता है। कृषि, गो-रक्षा आदि विद्यायें क्रियात्मक ही अधिकतर सिखाई जाती हैं, जिसके लिये खेत तथा गोशाला आदिका प्रबन्ध है। बाल-कक्षाके प्रथम दो वर्षोंको समाप्तकर विद्यार्थियोंको सार्वभौमी भाषाकी शिक्षा दो वर्ष तक दी जाती है। इस समय और विषय पूर्ववत् ही मातृ-भाषामें चलते रहते हैं। सिर्फ बालकोंका निवास सार्वभौमी छात्रावास होता है, जहाँ सब लोग केवल वही भाषा बोलते हैं।

यह सार्वभौमी भाषा क्या है? ऐस्पेरेंटो भाषाका और भी परिमार्जित रूप है। ऐस्पेरेंटोमें प्रयुक्त होनेवाले आर्टिकल्स (Articles) को उड़ा दिया गया। बिल्कुल पन्द्रह नियमोंमें इसका सारा व्याकरण समाप्त होता है। लिंग, विभक्ति, प्रत्ययमे अटल नियम हैं, जिनका अपवाद कहीं नहीं होता। जैसे वचन दो ही हैं—एक वचन, बहुवचन। लिंग तीनों हैं। किन्तु निर्जीव पदार्थोंमें सभीके लिए नपुंसकलिंगका प्रयोग होता है, स्त्रीलिंगवाले सभी शब्द आ, ई, ऊ, अन्तवाले होते हैं। तथा केवल सजीव हीके लिए प्रयुक्त होते हैं। क्रियारूपोंके लिए सीधे-सीधे चार काल हैं, अर्थात् भूत, भविष्य, वर्तमान और आज्ञा। वचन यहाँ भी दो हैं। बाकी पुरुष ज्योंके-त्यों हैं। धातुओंका चुनाव खास तौरसे हुआ है। पहले वाली; प्राकृत जेन्द, और संस्कृत भाषाओंमें जो धातु एक-से हैं, उन्हें छाँट लिया गया है, अब इन धातुओंसे ग्रीक, लैटिन, एवं ट्युटानिक (Teutonic), रोमन (Roman), स्लाव (Slav) और केल्टिक (Celtic) भाषाओंकी धातुओंसे तुलना करके जो धातु बहुत-सी भाषाओंमें सम्मिलित हैं, उन्हें चुन लिया गया है। सार्वभौमी में इन्हीं धातुओंसे बने शब्दों और क्रियाओंको लिया गया है। वैज्ञानिक शब्द जो

अब तक यूरोपीय भाषाओंमें प्रचलित थे, वही स्वीकार कर लिये गये हैं। केवल उनके अन्तमें उनके लिंगके अनुसार प्रत्यय लगा दिये गये हैं। अपने जीवनमें राष्ट्रीय आवश्यकता या भ्रमण आदिके लिए इस भाषाकी बड़ी आवश्यकता है। इसलिए बाल-कक्षामें नवें और दसवें वर्षमें इसकी शिक्षा अनिवार्य-सी है। सार्वभौमी छात्रावासमें जाने पर मुझे सभी बालक उसीमें वार्तालाप करते मिले। उस समय दसवें वर्ष वालोंने मेरे आनेके उपलक्षमें अपनी प्रसन्नता इसी भाषामें प्रकट की। जिसके बहुतसे शब्द मुझे समझमें आने लगे थे। लोगोंने बतलाया, यह भाषा भूमंडलवासियों-की प्रायः सभी मातृ-भाषाओंका पूर्ण बीज रखनेसे सभीके लिए आसान है। चीन, जापान, स्याम, तिब्बत, बर्मा आदि देशोंमें भी इसका खूब प्रचार है। × × × × × × × × भारतमें सभी जगह भारती भाषा इस समय मातृ-भाषा है। पेशावरसे बगदाद तक बोली जानेवाली फारसी भी इसके कुलकी है। यूरोप की भाषाओंकी भी वही दशा है, जिनका प्रचार यूरोप ही नहीं, अफ्रीका, अमेरिका, आस्ट्रेलिया तथा भूमण्डलके अन्य द्वीपोंमें है।

यह पहले कहा जा चुका है कि आजकल की शिक्षा-प्रणालीका मूल-सूत्र है, बालककी स्वाभाविक जिज्ञासा रखनेवाली बुद्धिको उसकी अभीष्ट-प्राप्तिमें मदद पहुँचाना। इसीलिए परीक्षा करके जिस ओर बालककी स्वाभाविक रुचि होती है, उधर ही उसकी शिक्षाका मार्ग खोला जाता है। दो शताब्दियों के अनुभवने बतला दिया है कि यही वास्तविक शिक्षा है। जबर्दस्ती ठोंक-पीटकर वैद्यराज बनानेवाले विचारने अनेक स्थानों पर बाधा पहुँचायी थी। पुराने समयके लोग भी खूब थे—खासकर २०वीं शताब्दीके। जिस प्रकार माता-पिता पुत्रकी इच्छा और उद्देश्यको देखे बिना बालकपनहीमें उसका जोड़ा उसके गले बाँधते थे, वैसे ही यह भी निश्चय कर डालते थे कि मेरा लड़का वकील होगा, मेरा डाक्टर इत्यादि। फल इसका यह होता था कि कितनी ही बार बालकको अपनी विद्या, रोचक कौन कहे, क्वीनैनकी गालीसे भी कड़वी मालूम होती थी,

और उसका कोई सुपरिणाम न होता था। किन्तु अब मामूली शिष्टाचार और लोक-व्यवहारका उपयोगी ज्ञान तो बालकोंको देखते-देखते और सुनते-सुनते हो जाता है, और विद्याकी बात उनकी प्रवृत्ति पर आरम्भ होती है। इस प्रकार गणित और ज्योतिषकी ओर प्रवृत्ति रखनेवाले बालक उतने ज्ञान का बाल-कक्षाहीमें सम्पादन कर लेते हैं, जितना बीसवीं शताब्दीके उस विषयके एम० ए० भी नहीं जानते थे। अंकगणित, रेखा-गणित, बीजगणित, त्रिकोणमिति, अक्षमिति, चलन-कलन आदि सभी गणितकी शाखाओंमें उनका पूरा अधिकार हो जाता है। वह अपने पाठ्यविषयमें नित्य नवीन उत्सुकता और उत्साहके साथ संलग्न रहते हैं। उनका पठित विषय बहुत कुछ उपस्थित रहता है। साधारण ज्योतिषकी शिक्षा तो उनकी प्रथमहीसे आरम्भ रहती है। अपने अगले मार्गमें जहाँ-जहाँ जिस-जिस गणितकी आवश्यकता प्रतीत होती है, उधर बड़े आनंदसे वह प्रवृत्त होते हैं। साहित्य, भाषा, इतिहास, भूगोल, विज्ञान आदि में भी यही बात है, यद्यपि कोई बालक इन विद्याओंके साधारण ज्ञानसे भी सर्वथा अनभिज्ञ नहीं रहता। कारण, उसके नित्यके व्यवहारमें, बात-चीतमें, संसर्गमें, उनकी आवश्यकता पड़ती है। भविष्य-जीवनमें भी उनका साधारण ज्ञान अनिवार्य मालूम होनेसे वे उधर भी थोड़ा-बहुत परिश्रम स्वयं कर डालते हैं; किन्तु प्रकृतिके अनुकूल न होनेसे वह अधिक दूर तक उसमें नहीं जाते। बीसवीं शताब्दीमें जैसे खास-खास ही पाठ्य पुस्तकें रख दी जाती थीं, वैसा अब नहीं है। कौन-सी पुस्तक अब पढ़नेको देनी चाहिये, यह उस अध्यापककी इच्छापर निर्भर है, जो अपने विद्यार्थीकी प्रकृतिका बराबर निरीक्षण कर रहा है। समान प्रकृतिवाले छात्रोंकी टोलियाँ बनी रहती हैं, जिनके लिए प्रकृति विषयका मर्मज्ञ अध्यापक रहता है। विद्याके लिए अपेक्षित सभी सामान मौजूद रहते हैं। इस प्रकार शिक्षामें आजकी चाल आकाश-विमानोंही की भाँति तेज है।

बाल-कक्षाकी सभी बस्तियोंको हमने घूम-घूमकर देखा। सिर्फ इसी एक कक्षाके पाँच बड़े-बड़े ग्राम हैं। हर एक ग्राममें निवासियोंकी आवश्य

कलाके सभी सामान मौजूद रहते हैं। अन्यत्र जैसे मैंने सब जगह यह नियम-सा देखा था कि मकान कोठेवाले नहीं होते, यहाँ विद्यालयमें सभी मकान तीन-महला, चार-महलासे ऊपरहीके हैं।

विद्यार्थियोंको पुस्तकें तथा अन्य सामान रखनेके लिए अलग-अलग आलमारियाँ हैं। पढ़नेके लिए पृथक् पाठशालाका विशाल भवन है। खेलने-कूदने, लड़ने, तैरने आदिके बड़े-बड़े मैदान तथा तालाब हैं। बालकोंका शरीर देखनेहीसे पता लगता है कि उनकी शारीरिक उन्नतिपर कितना ध्यान दिया जाता है। सब बातोंका पूरा निरीक्षण करके दोपहर का भोजन भी हमने यहीं ग्रहण किया।

चौदह वर्षही की अवस्थामें बालिकाओंको इतना ज्ञान हो जाता है, जो कि २०वीं शताब्दीमें पर्याप्तसे भी कहीं अधिक कहा जाता। बालकोंकी अपेक्षा बालिकायें संगीत, आलेख्य, चिकित्सा और साहित्यमें अधिक रुचि रखतीं तथा योग्य भी निकलती हैं। बालिकाओंकी अवस्था देखकर बीसवीं शताब्दीके वे आदमी भी अपने विचार बदल डालते, जिन्हें कई निर्बलतायें स्त्री-जातिमें स्वाभाविक मालूम होती थीं। मुझे यहाँके शिक्षण और योग्यताको देखकर निश्चय हो गया कि आजकलके मानव-जगत्की बहुत-सी न्यामतें इसीकी बदौलत हैं। एक ओर तो हजारों झगड़ों और आपत्तियोंकी जड़ पारस्परिक असमानता उठा दी गई और दूसरी ओर ऐसी सर्वगुण-भूषित शिक्षा; फिर क्यों न मनुष्य-लोक पुराने ख्याली देव-लोकसे भी अच्छा हो जाये?

शिक्षा-पद्धति : तरुण-कक्षा

पूर्व क्रमहीसे मैं नित्य विद्यालयके एक-दो विभागोंका निरीक्षण करता रहा और १२ दिन ऐसा करते रहनेपर एक बार सरसरी तौरसे सबको देख सका। शिशु-कक्षा और बाल-कक्षाकी शिक्षा जिस प्रकार अनेक विषयोंमें होती है (यद्यपि उसमें विद्यार्थीकी स्वाभाविक प्रवृत्तिका पूरा ध्यान

रखा जाता है) वैसा मिश्र शिक्षण तरुण-कक्षामें नहीं है । संसारके व्यवहारोंको अच्छी तरह चलाने तथा मनुष्यकी वैसी जिज्ञासा भी होनेसे प्रथम दो कक्षाओंमें कुछ सर्वतोमुखी-सी शिक्षा दी जाती है, किन्तु तरुण-कक्षामें शिक्षा पानेवालोंके लिए अनेक विद्यालय हैं, जो विद्याकी एक शाखाकी शिक्षा देते हैं । विद्यार्थी अब केवल उसी विद्याका अध्ययन करता है, जिसकी ओर उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है और जिसे उसने पिछले वर्षोंमें भी मुख्य तौरसे औरोंको गौण रखते हुए पढ़ा है । यद्यपि ऐसे बालकोंकी संख्या बहुत कम होती है, किन्तु हैं ऐसे भी विद्यार्थी, जो व्यवहारोपयोगी ज्ञानसे इसलिए अनभिज्ञ रह जाते हैं कि उनकी रुचि न होनेसे उधर उनको परिश्रम नहीं कराया जाता ।

नालन्दा विद्यालयमें पृथक्-पृथक् विषयोंके पन्द्रह विद्यालय हैं, जो भाषा-पुरातत्त्व, ज्योतिष, दर्शन, विज्ञान, साहित्य, संगीत, आलेख्य, वास्तु (सिविल इंजीनियरिंग), आयुर्वेद,, वनस्पति, प्राणि, कृषि, यांत्रिक एवं शिक्षण विद्यालयोंके नामसे प्रसिद्ध हैं । अध्यापक अपने-अपने विषयके पूर्ण ज्ञाता हैं । भाषा-पुरातत्त्व विद्यालयोंमें इतिहासकी मौलिक सामग्रीसे परिचय एवं उसके एकत्रित करनेका ढङ्ग बतलाया जाता है । यह बीसवीं शताब्दी नहीं, बाईसवीं शताब्दी है । भूमि, बालू अथवा समुद्रोंके नीचे पड़ी हुई सामग्रियाँ बहुतायतसे इधर मिली हैं । अनेक पुरानी जातियोंके धर्म, आचार-विचार तथा इतिहासपर इधर बहुत प्रकाश पड़ा है । भारत, मिस्र, असर, कल्दान, ईरान, मेक्सिको, ब्राजील आदि अनेक देशोंकी प्राचीन सभ्यताकी परिचायक अनेक सामग्रियाँ हाथ लगी हैं । राष्ट्रने इन सामग्रियोंके प्राप्त करने और सुरक्षित रखनेमें कोई कसर नहीं उठा रखी है । जहाँ प्राचीन खंडहरोंको खोदने, चीजोंकी रक्षाके लिए सुरक्षित स्थान बनानेमें लाखों आदमी काम कर रहे हैं, वहाँ हजारों विद्वान् दिन-रात उनके रहस्यके खोलनेके लिए भी परिश्रम कर रहे हैं । भारतकी प्राचीन सभ्यता और इतिहासके लिए मध्य-एशिया, तिब्बत, हिमालय, जावा, बाली, स्याम, सुमात्रा और लंका (सीलोन) तक छान मारा गया है । इस

काममें नालन्दा-विद्यालयका हाथ सबसे अधिक क्या, बिल्कुलके करीब है। पुरातत्त्व-विद्यालयके साथ यहाँ इतिहासकी इन सामग्रियोंका एक बड़ा भारी संग्रहालय है, इसमें प्राचीन भारत ही नहीं; असुर, मिश्र, मेक्सिको आदि देशोंके इतिहासकी सामग्री भी है। संसारके दूसरे संग्रहालयोंमें जो वस्तुएँ इस प्रकारकी हैं, उनकी भी यहाँ प्रतिकृति रखी गई है। इसमें स्वयं नालन्दा-विद्यालयकी भी पुरानी बहुत-सी वस्तुएँ एकत्रित की गई हैं। यहाँकी ऐतिहासिक सामग्रियाँ, जो पहले दूसरे संग्रहालयमें चली गई थीं, वह भी अब यहाँ लौट आई हैं। संग्रहालय-भवन आठ तलोंका, बड़ी दूर तक फैला हुआ है। भाषाओंकी शिक्षाका नवीन ढंग ऐसा सरल निकला है कि जिससे और भी बहुत-सी कठिनाइयाँ दूर हो गई हैं। पुरातत्त्व और इतिहासके मौलिक जिज्ञासु विद्यार्थियोंको पहले उनके अभीष्ट विभागमें अपेक्षित भाषाओंका ज्ञान कराया जाता है।

ज्योतिष-विद्यालय राजगृहमें है। इसके साथ एक बहुत भारी वेधशाला है, जो वहाँके 'बैभार गिरि' पर बनी है। बैभार गिरिकी कायापलट हो गई है। ऊपर जानेके लिए बहुत अच्छी सड़क है, जिसके अगल-बगल वृक्ष लगे हैं। वेधशालामें अनेक दूरवीक्षण यन्त्र हैं, जिनमें एक तो संसारके तीन सबसे बड़े दूरवीक्षणोंमें है। जिसमें ग्रहोंकी साधारणतया देखी जानेवाली आकृति लाखों गुनी बड़ी दिखाई देती है। इसी प्रकार वर्णवीक्षण (Spectroscope) यन्त्र भी बहुत भारी ताकतका है। तार-रहित तारका यहाँ ही एक बड़ा अड्डा है। अब मंगलके विषयमें बहुत अधिक ज्ञान हो गया है। वहाँसे ऐसेही वार्तालाप होने लगा है, जैसा कि भूमण्डलमें एक जगहसे दूसरी जगहपर। पहले एक दूसरेकी भाषा समझनेमें कठिनाई हुई थी, किन्तु अब वह भी जाती रही। यद्यपि दिन-प्रतिदिन वृष्टि और जलकी कमी होती जाने एवं मंगलगर्भीय उष्णता—जीवन शक्ति—का ह्रास होते जानेसे वहाँके लोग चिन्तित हैं, तो भी उन्होंने इसके लिए बहुत-सा उपाय किया है। जहाँ एक ओर नहरोंका जाल-सा बिछा दिया है, वहाँ अपने यहाँकी जनवृद्धिको भी

रोक दिया है—रोक ही नहीं, बल्कि कम करना आरम्भ किया है। यद्यपि लोग भी इसके प्रयत्नमें हैं कि किसी नये ग्रहमें जायें, किन्तु अभी तक इसका कोई उपाय नहीं सूझा है। भूमंडलके लोग भी उनकी कठिनाइयोंको देखकर चुप नहीं हैं। वह भी इसका हल ढूंढ़ रहे हैं। कोई-कोई इस बातकी भविष्यवाणी भी करने लगे हैं कि वह समय समीप है, जबकि मनुष्य एक ग्रहसे दूसरे ग्रहमें जा सकेंगे। यदि ऐसा हो सका, तो हमारा अपने रहन-सहनका संसार तथा भाई-बन्धुपन और भी बढ़ जायगा। एक-एक ग्रहके ठंढा होनेपर लोग पहलेहीसे दूसरे ग्रह में चले जा सकेंगे। बैभारगिरिपर वेधशालाके कामहीके लिए दूर तक मकान बन गये हैं। पानी और बिजलीका ऊपर ही खूब अच्छा प्रबन्ध हो जानेसे वह और भी अधिक आनन्दका स्थान हो गया है।

दर्शन-विद्यालय यहाँसे दो कोस पीछेकी ओर है। यहाँ भारतीय सेश्वर-निरीश्वर दर्शन ही नहीं, भूमंडल भरके दार्शनिक विचारोंका अध्ययनाध्यापन होता है। आचार्य वशिष्ठ इस विषयके स्वयं अपूर्व विद्वान् हैं। उनका बहुत समय इसीके पठन-पाठनमें व्यतीत होता है। सभी विद्यालय एक दूसरेसे दूर-दूरपर हैं। उनके बीचमें या तो मैदान हैं, या आम-लीची आदि फलोंके कोसों लम्बे बाग। सभी विद्यालय पुस्तकालयों तथा अपेक्षित अन्य सामग्रियोंसे युक्त हैं। जहाँ विज्ञान-विद्यालय रसायनशाला तथा प्रयोगशालासे सुसज्जित हैं; वहाँ वनस्पति और प्राणिशास्त्रके विद्यालयोंसे साथ बड़े-बड़े वनस्पति-उद्यान एवं प्राणि-संग्रहालय हैं। इस प्रकार सभी विद्यालय सांगोपांग विद्या-वितरण कर रहे हैं। उनके पासही में उन-उन विद्यालयोंमें छात्रवास हैं। छात्रावास क्या हैं, एक-एक ग्राम हैं। बालकों और बालिकाओंके छात्रावास तथा विद्यालय इकट्ठे ही हैं। स्त्री-पुरुषका भेद ही उठा-सा दिया गया है।

विद्यालयकी बस्तियोंमें भोजन बनानेवाले तथा स्वच्छता एवं मशीनों आदिके सुधारके लिए कुछ और लोग नियुक्त हैं, जिनके निवास-स्थान अलग बस्तियोंमें हैं। लड़कोंके वस्त्र धोने एवं कपड़ा सीनेके गाँव भी

पृथक् हैं। इसी तरह गोपाल-ग्राम भी पास, किन्तु विद्यालयकी सीमाके बाहर है। पुस्तकोंके छापनेके लिए जो 'नालन्दा प्रेस' पहले खोला गया था, अब उसका काम बहुत बढ़ गया है। भिन्न-भिन्न शास्त्रोंके यहाँसे कई मासिक-पत्र निकलते हैं। नालन्दाके पुराने स्तूपों और इमारतोंको पूरा सुरक्षित रक्खा गया है। भैरवजीके नामसे २०वीं शताब्दीके ग्राम्यजनोंमें प्रसिद्ध बुद्धकी मूर्तिपर अब एक बहुत अच्छी छतरी लग गई है। वह विशालकाय, सुन्दर, शांत मूर्त्ति अब और भी अधिक मनोहर मालूम होती है। उसके पासका बड़ा स्तूप अब नया-सा मालूम होता है। सूर्य-नारायण और उसके पासका वह गाँव अब नहीं है।

विद्यालयकी तरुण-कक्षा एवं विद्यालयकी शिक्षा समाप्त कर और अधिक पढ़नेवाले विशेषज्ञोंकी श्रेणीमें भारतसे बाहर लंका, बर्मा, स्याम, जावा, चीन, जापान, तिब्बत आदि देशोंके विद्यार्थी बहुत अधिक संख्यामें हैं। इन देशोंके आचार्योंमें आजकल नालन्दाके शिक्षितोंकी काफी संख्या है। संसारमें कोई विद्या नहीं, जिसकी उच्च शिक्षा विद्यालय न देता हो। ऐसे ही संसारका शायद ही कोई कोना होगा, जहाँ नालन्दाका छात्र न हो।

शासन-प्रणाली

नालन्दामें रहते हुए और कामोंके साथ मैंने उचित समझा कि आजकलकी शासन-प्रणालीका भी ज्ञान प्राप्त करूँ। इस कार्यमें उपाध्याय विश्वामित्रने बड़ी सहायता की। अब तकके वर्णनसे यह मालूम ही हुआ होगा,, कि भूमंडलमें सभी जगह अब समताका राज्य है। धर्मके नामपर, ब्राह्मण-राजपूत-शेख-सय्यद जातियोंके नामपर, धन और प्रभुताके नामपर, गोरे और कालेके नामपर, जो अत्याचार पहले होते थे, कितनी ही मानव-सन्तानें दूसरोंके पैरोंके नीचे आजन्म कुचली जाती थीं, उन

सबका अब नाम नहीं। अब मनुष्य-मनुष्य बराबर हैं, स्त्री-पुरुष बराबर हैं। सभी जगह श्रम और भोगका समत्व मूल-मन्त्र रखा गया है। न अब भूमंडलमें जमींदार हैं; न सेठ-साहूकार हैं; न राजा हैं; न प्रजा; न धनी हैं; न निर्धन, न ऊँच हैं न नीच। सारे भूमडलके निवासियोंका एक कुटुम्ब है। पृथ्वीकी सभी स्थावर-जंगम सम्पत्ति उसी कुटुम्बकी सम्पत्ति है। दैनिक आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए जिन-जिन पदार्थों की आवश्यकता है, उनके उत्पादन और संग्रहके लिए अपनी-अपनी योग्यतानुसार सभी सचेष्ट होते हैं। श्रम कम और उत्पत्ति अधिक होनेके लिए कार्यों और श्रमोक बहुत-से विभाग कर दिये गये हैं। बीसवीं शताब्दीके लोगोंको आजकलका विभाग विचित्र-सा मालूम होता। अब तो जीवनकी एक भी आवश्यक वस्तु शायद ही एक कोई गाँव बिना दूसरेकी सहायताके उत्पन्न करता हो। जहाँ पहलेका एक ग्राम अनेक प्रकारके अनाज, साग-तरकारियोंके अतिरिक्त कितने ही छोटे-छोटे शिल्पोंका भी व्यवसाय करता था, वहाँ आजका यह विचित्र गाँव है, जो आकार, संख्या और खर्चमें उससे कई गुना बड़ा होने पर भी एक भी चीज पूरे तौरसे पैदा नहीं करता। यदि गेहूँ पैदा करता है, तो आटा दूसरी जगह पीसा जाता है; यदि ऊख पैदा करता है, तो चीनी दूसरी जगह बनती है; यदि दूध पैदा करता है, तो घास-दाना दूसरी जगहसे मँगाता है, यदि सिलाई करता है तो कपड़ा दूसरी जगहसे मँगाना होता है। मशीनोंकी ढलाई-सुधराई तो खैर दूसरी जगह पहले भी होतीं थी। आजकलका सारा मनुष्य-समाज जिस प्रकारकी जीवन-सामग्रियोंसे परिपूर्ण है, उन सबके लिए यदि ऐसा न किया जाता, तो बहुत समयकी आवश्यकता होती। आज जिस प्रकार कुल चार घण्टे काम करके ही मनुष्य सारी आवश्यकताओंको प्राप्त कर बाकी बीस घंटे जीवनके अन्य आनन्दोंके उपभोगमें लगाता है, वैसा वह कब कर सकता था? यंत्रोंका न उपयोग करते, तो इतना भोग प्राप्त करना असम्भव था, चाहे सारा भी समय उसीके लिए क्यों न समर्पण किया जाता। यंत्रोंके उपयोगको भी अधिक लाभदायक बनानेके लिए यह श्रम-विभाग उपयुक्त

सिद्ध हुआ है। ऐसे पहले भी श्रम-विभाग कुछ तो हुआ ही था, किन्तु आजकलके लोगोंने इस सूत्रको और विस्तृत अर्थमें प्रयोग किया है।

पहले शासनोंमें रचनात्मक कार्योंकी अपेक्षा ध्वंसात्मक कार्योंहीकी मात्रा अधिक थी। जब कभी लड़ाई छिड़ जाती, तब तो मानों इसका ज्वालामुखी फूट निकलता था।

इस विषयमें और कहनेसे पूर्व उचित प्रतीत होता है, कि वर्तमान शासन-व्यवस्थाके ढांचेका कुछ जिक्र कर दिया जाय। सारे भूमंडलकी शासन-व्यवस्थाका मूल ढांचा ग्रामकी शासन-व्यवस्थाको समझिए। ग्राम-शासन सभा—या जिसे संक्षेपमें ग्राम-सभा कहते हैं—में अपनी जन-संख्याके अनुसार सैकड़ों पीछे एक पंच चुननेका अधिकार है। यदि किसी गाँवमें पांच हजार आदमी हैं, तो वहाँकी ग्राम-सभाके पचास सभासद होंगे। इस चुनावमें सम्मति देने तथा खड़ा होनेके लिए उस ग्रामके प्रत्येक नर-नारी समान भावसे योग्य हैं, यदि कोई मानसिक अथवा शारीरिक असमर्थता इसमें बाधक न हो। यह सभासद फिर अपना सभापति या ग्रामणी, तथा × × × × सोलह सभासदोंकी कार्यकारिणी समिति बनाते हैं। × × × × × × × × × × × × × इसी कार्यकारिणीके हाथ में ग्रामकी आवश्यकता और उत्पत्तिकी देखरेख तथा प्रबन्धका भार रहता है। पेहले एक बार कहा जा चुका है, कि ग्रामकी प्रत्येक श्रेणीका एक नायक होता है। यह नायक सौ परिवारों द्वारा चुना जाता है, जिनमें अधिक-से-अधिक दो सौ व्यक्ति हो सकते हैं। दो सौ से कम इसलिए हो सकते हैं, कि शायद कुछ पुरुष-स्त्री अविवाहित हों। ग्राम-कार्यकारिणी समिति इन नायकोंसे अपना बहुत-सा कार्य शासन-सभाकी सहायता करना है, किन्तु इन नायकोंका उस समय यह प्रधान कर्तव्य होता है। पूर्व-काल की पुलिसका कार्य इन्हींके द्वारा लिया जाता है। किसी कार्यके कारण अनुपस्थित होनेपर इनके स्थानपर ग्राममें सहायक नायक कार्य करते हैं।

ग्रामके सभी व्यक्तियोंको भिन्न-भिन्न कार्यपर नियुक्त करना ग्राम-सभाकी सम्मति-अनुसार कार्यकारिणीका काम है। यह आवश्यकतानुसार वैद्य, धाय, पुस्तकाध्यक्ष, भोजनाध्यक्ष, भण्डारी आदि सभी विभागोंके प्रमुखों को नियुक्त करती है। ग्राम सभाके एक बार के चुने सभासदों की अवधि अधिक से-अधिक तीन वर्ष है। यही अवधि यहाँसे सार्वभौम सभाके सभासदों तककी है, किन्तु शिक्षा सम्बन्धी संस्थाओंके लिए चुने गये व्यक्तियों के लिए यह नियम लागू नहीं है। इस प्रकार किसी शिक्षकको आजन्म अपने पदपर रहनेका अधिकार है, यदि उसने जनताकी दृष्टिमें कोई अक्षम्य अपराध न किया हो।

ग्रामोंके बाद बहुत-से ग्रामोंको मिलाकर पहले तहसील या सब-डिवीजन सभायें तथा कहीं-कहीं थाना सभायें थीं। किन्तु उनको टूटे सौ वर्षसे ऊपर हो गये। ग्रामोंके सुन्दर प्रबन्ध, बिजलीकी सवारी-गाड़ियों तथा टेलीफोनोंका प्रतिग्राममें उत्तम प्रबन्ध होनेसे वस्तुतः जिलाकी दूरी अब तहसीलहीके बराबर रह गई है। जिस प्रकार प्रत्येक सौ आदमियोंपर एक आदमी ग्राम-सभाका सभासद चुना जाता है, वैसे ही बीस हजारपर एक आदमी जिला शासन सभाका सभासद् चुना जाता है। जैसे पटना मे दस लाख आदमी रहते हैं और यहाँकी शासन-सभामें पचास सभासद हैं। प्रत्येक पाँच सभासद पर कार्यकारिणीका सभासद चुना जाता है। इस प्रकार पटना जिलाकी कार्यकारिणीके दस सभासद हैं, जिनके हाथमें क्रमशः निम्न दस विभाग हैं—

१—शिक्षा,

२—स्वास्थ्य, जन-संख्या-सावधीकरण,

३—शान्ति-व्यवस्था, न्याय,

४—अर्थ,

५—दूसरे जिलों तथा स्थानोंसे लेन-देन,

६—कृषि, शिल्प-व्यवसाय,

७—यंत्र-गृहादि-निर्माण और सुधार,

८—डाक, तार, रेल, विमान,

९—पुरातत्त्व-इतिहास-संरक्षण,

१०—प्रेस ।

चुनाव होनेसे पहले जिलाकी ग्राम-सभायें तथा जन-साधारण द्वारा उम्मीदवारोंके नाम आते हैं, जिन्हें जन-साधारणकी अनभिज्ञता और विचारके लिए चुनाव-तिथिसे पूर्व ही प्रकाशित कर दिया जाता है। पीछे उनके विषयमें प्रत्येक ग्राममें एक ही दिन, एक ही समय वोट लिया जाता है; फिर बहु-सम्मतिसे निर्वाचित पुरुषों तथा स्त्रियोंका नाम प्रकाशित कर दिया जाता है। किसी प्रकार अयोग्य सिद्ध होनेपर उस सभासदको स्थानसे च्युत करनेका अधिकार उसके निर्वाचकोंको है। एक सभासदके निर्वाचनका हल्का पृथक्-पृथक् होता है। पटनामें ऐसे-ऐसे पचास हल्के हैं। जिलेका जिस जगह सदर रहता है, वहाँके लोगोंका प्रधान काम पुराने कागज-पत्रोंके सुरक्षित रखनेका काम, शासनके अनेक विभागोंके काम, सभी वहींपर होते हैं। यद्यपि प्रति तीसरे वर्ष जिला-शासन-सभाके सभासदोंका परिवर्तन हो जाता है, किन्तु भिन्न-भिन्न विभागोंके दफ्तरोंके कार्यकर्ता, तथा अन्य कार्य-निर्वाहक पूर्ववत् ही बने रहते हैं। कार्यकारिणीके सभासद अपनी अवधि भर जिलाके प्रधान स्थानपर निवास करते हैं।

जिलाके विभागोंमें प्रथम, द्वितीयका कार्य तो नामहीसे स्पष्ट है। शान्ति-व्यवस्था, न्याय-विभाग, शान्ति-स्थापन, अदालत और अपराधियोंको उचित दंड और सुधारका काम करता है। किसीकी व्यक्तिगत कोई सम्पत्ति न होनेसे अब तो दीवानीका शब्द ही उठ गया है। इसलिए कचहरी कहनेसे सिर्फ फौजदारी कचहरी ही समझना चाहिए। जैसे संसारसे और दूकानें उठ गईं, वैसे ही गवर्नमेंटको स्टाम्पफरोशी, अमलोंकी पान-सुपाड़ी, वकीलोंका मिहनताना भी उठ गया। उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दीके इस प्रतिष्ठित पेशेका तो एकदम ही पता नहीं है। अदालतका

कमरा खुला हाल है, जिसमें न्यूनातिन्यून दो विद्वान् वृद्ध अनुभवी जज बैठते हैं। प्रत्येक अभियोग अपने ग्रामकी न्याय-पंचायत—जो ग्राम-सभा द्वारा संगठित की गई एक समिति होती है—से होकर आता है, जिसमें या तो ग्राम-सभा अपना फैसला दे दिये रहती है या आरम्भिक अनुसंधान के बाद जिला की अदालतमें भेज देती है। वादी, प्रतिवादी, गवाह सभी होते हैं। न्यायाधीश स्वयं हर बातकी गहराई तक पहुँचनेका प्रयत्न करते हैं। अभियोगोंकी संख्या बहुत ही कम होती हैं, इसलिए कचहरियोंकी चहल-पहल नहीं है। मुकदमे अपमान मार-पीट अथवा खून इन्हीं तीन दफाओंमें खतम हो जाते हैं। फाँसी या प्राण-दण्डकी सजाही अब एकदम उठा दी गई है, उसके स्थानपर अपराधियोंको किसी टापूमें मनुष्य-समाजके आनन्दसे वञ्चित करके रखा जाता है, जहाँ उसके भली प्रकार इलाज, शिक्षण आदिका प्रबन्ध होता है, किन्तु जब यह सिद्ध हो जाता है कि अब उसके स्वभावमें परिवर्तन हो गया, अब यह समाजके लिये खतरनाक नहीं है, तो फिर उसे छोड़ दिया जाता है। दूसरे अपराधोंके बन्दियोंके लिए प्रत्येक प्रान्तको एक जेल रखना पड़ता है, जहाँ उन्हें रखकर सुधारा जाता है।

पाँचवें विभाग द्वारा जिलामें उत्पन्न वस्तुए आवश्यकतावाले बाहरी स्थानोंमें भेजी जाती हैं, और दूसरा जिला तथा प्रान्त आदिसे आवश्यक वस्तुयें मंगाई जाती हैं। यह मानों जिलाके भीतर और बाहर वस्तुओंके बदलनेका द्वार है। बाकी दूसरे विभाग नामहीसे स्पष्ट हैं।

कई जिलोंके ऊपर प्रान्तीय शासन-सभा होती है। प्रत्येक दो लाख मनुष्यों पर इसका एक सभासद चुना जाता है। निर्वाचनसे पूर्व नामजद करनेका तरीका नीचेसे ऊपर तक एक-सा ही है। बिहारमें दो करोड़ स्त्री-पुरुष सम्मति देनेवाले हैं। इस प्रकार प्रान्तीय सभामें वहाँ एक सौ सभासद हैं। इसकी कार्यकारिणीमें भी पूर्ववत् दस विभागोंमें दस सभासद या मन्त्री हैं। इनके कार्य भी पूर्ववत् ही हैं, किन्तु क्षेत्र विस्तृत

है। प्रान्तका न्यायालय अपीलका अन्तिम स्थान है। यहाँ भी कार्य-कारिणी के सभासदों तथा सभापतिका प्रान्तके मुख्य स्थानमें अपनी अवधि भर रहनेका नियम है। अन्य सभासद केवल सभाकी बैठकोंके समयमें ही आते हैं।

प्रान्तोंके ऊपर देश-सभा है। इसके लिए प्रति दस लक्ष पर एक प्रतिनिधि चुना जाता है। भारतमें इस समय बीस करोड़ सम्मतिदाता स्त्री-पुरुष रहते हैं, बाकी पाँच करोड़ बीस वर्षसे कम तथा विद्यार्थी-अवस्थामें हैं। भारत-शासनकी कार्यकारिणीमें भी वैसे ही दस आदमी कार्यकारिणीके सभासद होते हैं, जिन्हें अवधि-भर दिल्लीहीमें रहना होता है, किन्तु दो शताब्दी पूर्वके समान शिमला-निवास इन बेचारोंके भाग्यमें नहीं है। विभाग पूर्ववत् ही हैं, कार्यक्षेत्र विस्तृत है।

इसके ऊपर सार्वभौम सभा है, जिसके लिए पचास लाखपर एक सभासद चुना जाता है। इस समय भूमंडलकी मनुष्य-गणना एक अरब अट्ठासी करोड़ है, जिसमें अड़तीस करोड़ तो विद्यार्थी आदि हैं, बाकी डेढ़ अरब स्त्री-पुरुष सम्मतिदाता हैं। सार्वभौम सभाके तीन सौ सभासदोंमेंसे चालीस भारत भेजता है। सार्वभौमकी कार्यकारिणीमें पन्द्रह सचिव हैं। सार्वभौम सभाके सभापतिको राष्ट्रपति कहते हैं। सार्वभौम सभाका स्थान दक्षिणी अमेरिका के ब्राजील देशकी नारंग नदीके किनारे ठीक भूमध्यरेखापर है। यहाँही की अक्षांश-रेखा शून्य मानी जाती है। इस नगरका नाम सार्वभौम नगर है। इसे बसे आज सौ वर्षहो गये। जिस दिन सार्वभौम शासन स्थापित हुआ, उसी दिन एक सार्वभौम संवत् भी चलाया गया। आजकल संवत् १०१ चल रहा है। सार्वभौम सभाके सभासदोंकी यात्रा वायुयानों द्वारा हुआ करती है। राष्ट्रपति तथा कार्य-कारिणीके सभासद अथवा सचिव अपनी अवधि भर सार्वभौम नगरमें रहते हैं। सार्वभौम सभाकी कार्यवाही सार्वभौमी भाषामें होती है। सार्वभौम नगर में पचास सहस्त्र स्त्री-पुरुष रहते हैं। इनमें सभी देशोंके आदमी हैं,

जो भिन्न-भिन्न विभागोंके दफ्तरों तथा अन्य कार्योंमें नियुक्त हैं। सार्व-भौम सचिवोंके हाथमें निम्न विभाग हैं—

१—शिक्षा

२—स्वास्थ्य

३—शान्ति-व्यवस्था

४—अर्थ

५—लेन-देन, परिवर्तन

६—कृषि

७—शिल्प-व्यवसाय

८—यंत्र

९—गृह-पथ-निर्माण आदि

१०—डाक-तार

११—यान-विमान

१२—मुद्रण

१३—जन-संख्या-नियंत्रण

१४—पुरातत्त्व-संग्रहालय

१५—रेकर्ड-इतिहास

मनुष्य-गणनाको अधिक बढ़ने न देनेका पिछली दो शताब्दियोंमें बहुत प्रयत्न हुआ है और उसमें पूर्ण सफलता हुई है। इस विभागका सम्बन्ध ऊपरसे ग्राम तक है। प्रत्येक दसवें साल मनुष्य-गणना तो होती ही है, इसके अतिरिक्त, जहाँ दो माससे ऊपरका गर्भ हुआ, उसकी सूचना और गणना भी इस विभाग द्वारा बराबर पत्रोंमें निकलती रहती है। दो उद्देश्योंको लेकर यह विभाग कायम हुआ था। जन-संख्याकी वृद्धिको रोकना, और चिररोगी, राजरोगी द्वारा सन्तान न उत्पन्न होने देना। दोनोंही उद्देश्योंको इसने पूर्ण किया है। आजकल जो एक भी कुष्ठ, मृगी, उपदंश, बवासीर आदि रोगोंवाले आदमी नहीं मिलते, उसका कारण उक्त प्रयत्न ही है। ऐसी छूतकी बीमारियों वाले रोगियोंको

साधारण जन-समाजसे पहले अलग करके आरामके साथ रखने तथा उनकी चिकित्साका भी पूर्ण प्रबन्ध किया जाता है। इस प्रकार उन्हें अपने संसर्गसे रोग फैलानेका मौका नहीं दिया जाता। दूसरे, आगे सन्तान न हो, इसके लिए उनकी जनन-शक्तिको विशेष निर्धारित उपायोंसे नष्ट कर दिया जाता है। इस प्रकार मनुष्य जातिके चिर-शत्रु इन बीमारियोंका उन्मूलन किया गया है। इतनेपर भी देखा गया, कि यदि कोई रुकावट न डाली गयी, तो मनुष्य-संख्या बेतहाशा बढ़ती ही जा रही है। विशेषज्ञोंकी समितिने पृथ्वीकी औसत वार्षिक आमदनी निकाल बतलाई। मालूम हुआ, इससे पौने दो अरब से कुछ ही अधिक आदमी सानन्द जीवन व्यतीत कर सकेंगे। फिर क्या था ? यह भी हिसाबसे मालूम हो गया कि इतनी पैदाइशमें इतने तो मरनेवालोंकी जगह पूरा करते हैं। बाकी इतने केवल वृद्धि करते हैं। यदि प्रत्येक विवाहित दम्पत्ति दो या तीन सन्तान ही उत्पन्न करें, तो यह वृद्धि रोकी जा सकती है। इसपर फिर वही जनन-शक्ति नाश करनेकी प्रक्रियाका प्रयोग किया गया। प्रत्येक स्त्री-पुरुषके बुढ़ापेके आरामका जिम्मा तो अब राष्ट्रपर है, इसलिए सन्तान उत्पन्न करनेकी बड़ी लालसा तो ऐसे भी कम हो गई और उक्त प्रक्रियासे केवल जनन-शक्ति मात्रहीका ह्रास होता है, बाकी सब तो पूर्ववत् ही रहता है। इसे इसलिए लोग स्वयं पसन्द करते हैं। पहले अनेक पुरुष इसके विरोधी थें। उनका कहना था कि वृद्धि तो अवश्य रोकी जानी चाहिए, किन्तु कृत्रिम उपायसे नहीं, संयम-नियमसे। दूसरे विचार वालोंका कहना था कि यह संयम इतना सरल कार्य नहीं, जिसे राष्ट्रके सभी जन पालन कर सकें। जब यह बात है, तो इसपर ढील देना एक प्रकारसे जनवृद्धि को ही पुष्ट करना है। राष्ट्र इस मृगतृष्णाके भरोसे अपनी आवश्यकताओंको पूर्ण करनेसे नहीं रुका रह सकता। अस्तु, इसका फल अब यह हो गया है, कि और कामोंकी भाँति जनसंख्याका घटाना-बढ़ाना भी राष्ट्र-कर्णधारोंके हाथमें वैसे ही है, जैसे बिजली-बत्तीका जलाना और बुझाना।

नालन्दासे प्रस्थान

नालन्दामें पूरे एक पखवारे तक निवास करनेके बाद मैंने अपनी अगली यात्रा आरम्भ की । विश्वामित्रको वर्तमान और भूत जगत्का पूर्ण परिचय था, और वह मेरे भी पूर्ण परिचित हो गये थे । इसलिए मैंने अपनी यात्रामें उन्हें ही साथी चना । उन्होंने भी बड़ी प्रसन्नतापूर्वक इसे स्वीकार किया । आते समय यद्यपि पटना पड़ा था; किन्तु रात्रिका समय था, हमलोंग वहाँ उतर न सकते थे, इसलिए उसके बारेमें कुछ न जान सके । अब अपनी यात्रामें नालन्दासे प्रथम पटना ही चलना निश्चित हुआ । यात्रा दिनमें की गई, इसलिए मार्गकी भूमिके दृश्य भी खूब दिखाई पड़ते थे । विश्वामित्र इधरके गाँव-गाँवसे परिचित थे । वह बीच-बीचमें गाँवोंके बारेमें बहुत कुछ बतलाते जाते थे । नालन्दासे पटना साधारण ट्रेन द्वारा दो घंटेका रास्ता है । रास्तेमें आमोंके बाग़ बहुत देखनेमें आये । मैंन विश्वामित्र से कहा, कि पटनाके मालदह, लँगड़ा आम पहले भी बहुत मशहूर थे । उन्होंने बतलाया, अब आकार और स्वाद दोनोंमें और भी उन्नति हुई है । यहाँके आम सुमेर (उत्तरीय ध्रुव) से कुमेर (दक्षिणी ध्रुव) तक पृथ्वीमें चारों ओर भेजे जाते हैं । विदेह, मगध और अंग, तीनों ही खंड संसारके आमों और लीचियोंके बगीचे हैं । इनकी अधिक भूमि तथा निवासियोंका अधिक अंश इन्हींकी खेतीमें लगा रहता है । तारीफ यह है, कि अब यह दोनों ही फल बारह मास तैयार होते रहते हैं, हर वक्त हजारों रेलगाड़ियाँ इनसे लदी, बर्फसे सुरक्षित, एशिया और यूरोपके भिन्न-भिन्न भागोंमें दौड़ती रहती हैं । रेलोंका जाल तो एकमें एक लगा, आस्ट्रेलिया तथा और द्वीप-समूहों को छोड़ सारे भूमंडलमें बिछा हुआ है । काठमाडव्व (नेपाल), दार्जिलिंग और सदिया इन तीनों रास्तोंसे हिमालयको पारकर रेल तिब्बतमें घुसी है । तिब्बतमें बहुत दूर तक रेल है । अब तिब्बती लोगोंमें वह मलिनता नहीं रही । वह क्या, अब तो भूमण्डलका कोई भी मनुष्य-पुत्र स्वच्छता,

सभ्यताके मानव-गुणोंसे वंचित नहीं है। सभीके लिए शिक्षा और सुख-सामग्री आवश्यकतानुसार वितरण की जाती है। तिब्बतसे मंगोलियामें सीता बिछाती रेलवे लाइन अल्ताई पर्वतको पारकर साइबेरिया पहुँच जाती है। मंगोलियासे मंचूरिया और चीनके भिन्न-भिन्न प्रदेशोंमें रेलें गई हैं और फिर वह युन्-नान् होती यनाम, स्याम और बर्मामें फैल गई हैं। बर्माका सम्बन्ध थिर रेलोंसे चटगाँव और आसाम प्रान्तसे हो गया है। यही नहीं; बर्मासे मलाया होते समुद्रमें सुरंगसे सिंगापुर और सुमात्रा-को भी मिला दिया गया है।

तिब्बतसे पश्चिमकी ओर तुर्किस्तानके यारकंद, काशगर होती ताश-कन्द, समरकन्द, फिर अफगानिस्तान, ईरान, तुर्की और अरबमें रेलोंका जाल बिछा है। यूराल पर्वतको कितने ही स्थानोंपर पारकर रेलें रूसमें घुसी हैं। इधर कुस्तुन्तुनियामें समद्रोंपर सुरङ्ग बना एशिया और यूरोप मिला दिये गये हैं। फ्रांस और इग्लैण्डके बीचमें भी समुद्रमें सुरङ्गवाली रेल-लाइनें बिछी हैं। स्वेज नहरको सुरंगवाली रेलसे एशिया-अफ्रीका जोड़ दिये गये हैं। अफ्रीकामें भी सब जगह रेलोंका जाल है। इधर पिछली शताब्दियोंमें 'सहारा' की बालुकामय भूमिको अपार जलराशिसे भरकर एक समुद्र तथा उसके आस-पास लाखों मीलकी मरुभूमिको हरी-भरी कर देना एक बड़ा आश्चर्यमय कार्य हुआ है। अफ्रीकाकी जन-संख्या भी पहलेसे बहुत बढ़ गई है। आधा यूरोप वहाँ पहुँच गया है, इसके अतिरिक्त एशियाके भी बहुतसे आदमी वहाँ चले गये हैं, किन्तु अब यह पुराना वर्णभेद और देशभेद नहीं। सब एक कुटुम्बकी भाँति रहते हैं। हब्शी, यूरोपियन, एशियाई सभी शिक्षा-दीक्षा आदिमें समान हैं और रंग आदिमें भी समान होते जा रहे हैं।

इस प्रकार तो रेलमार्ग पूर्वी गोलार्द्धमें बिछा हुआ है। साइबेरियासे बेरिंग समुद्र-स्रोतको सुरंग द्वारा पार करती हुई गाड़ी उत्तरी अमेरिका के अलास्का प्रान्तमें पहुँच जाती है। फिर तो कनाडा, संयुक्तराष्ट्र,

मेक्सिको होती, पनामा नहरको सुरङ्गसे पार करती हुई गाड़ियाँ दक्षिणी अमेरिकामें घुस जाती हैं, और कोलम्बिया, पेरू, ब्राजील, बोलिविया, चिली, अर्जण्टाइना, उरुगाय, पटगोनिया आदि सभी खंडोंमें फैली हुई हैं।

यद्यपि इस प्रकार पृथ्वीका अधिक भाग क्या, आस्ट्रेलिया और अन्य छोटे टापुओं तथा जापानको छोड़ सभी भू-प्रदेश रेलोंसे जोड़ दिया गया है, किन्तु आसानीके साथ जहाज भी चीजोंके पहुंचानेमें बड़ा काम करते हैं। इनके अतिरिक्त दूर-दूरकी यात्रायें वायुयानों द्वारा ही होती हैं। मुख्य उत्तरीय और दक्षिणीय ध्रुवोंपर बस्ती हो गई है, जहाँ गर्मी या छः महीने वाले दिनमें लोग रहते हैं। ज्योतिष-शास्त्रके विशेषज्ञ तथा भौतिक तत्ववेत्ता वहाँ अधिक जुटते हैं। यात्रा वायुयान द्वारा होती है। आज-कलके लोग स्काटके आत्म-बलिदानकी कथायें भले ही पढ़ लें, किन्तु क्या उस समयकी कठिनाइयोंका ठीक अनुमान वे कर सकते हैं?

मगध और पटनाकी यात्रा करते बीचमें प्रसंगवश यह भी बातें आ गईं। इसके कारण मगधके आम और लीची ही हैं। इन लगातार आम और लीचीके बागोंमें गुजरते हमलोग आखिर पटना पहुंच ही गये। सूचना पहलेसे पहुंच गई थी। मगध-शासन-सभाके सभापति साथी यूसुफ कतिपय अन्य सभासदोंके साथ स्टेशनपरही स्वागतके लिए आये थे। स्वागतके बारेमें एक ही बार लिख देना चाहता हूं कि प्रत्येक स्थानवालोंने एक दूसरेसे बाजी मार ले जानेका प्रयत्न किया। जब मैंने नगर देखा तो मालूम हुआ कि पाटलिपुत्र तो अलग रहा, पटनाका भी वह पूर्ववाला आकार बिल्कुल उलट-पलट गया है। सारे पटना शहरमें केवल पन्द्रह हजार आदमी रहते हैं। अब उन तंग गलियों और सड़कोंका नाम-निशान नहीं, न उन चौतल्ले-तितल्ले मकानोंहीका कुछ पता है। सभी रहनेके मकान ग्रामोंकी तरह हैं। फुलवारी और वृक्षोंका भी वैसा ही शौक है। इससे जिस जगह पहले हजार आदमी रहते थे, अब मुश्किलसे पचाससे सौ आदमी तक रहते हैं। पटना मगध-प्रजातन्त्रका सदर है। यहाँ बहुतसे राष्ट्रीय दफ्तर हैं। छापाखाना बहुत भारी है। बिना तारके

तारका बड़ा स्टेशन है। वायुयानोंका भी बड़ा अड्डा है। यहाँके सभी निवासियोंका प्रधान काम इन्हीं विभागोंमें काम करना है।

यद्यपि रहनेके घर सभी एक-महले हैं; तो भी दफ्तर कई-कई तलों वाले हैं। कागज-पत्रोंका जो रेकार्ड-आफिस है, वह तो पूरे पचास तलोंका है। नीचेसे सबसे ऊपरवाले तलपर पहुँचना परिश्रमका काम है, इसीलिए यहाँ वही बिजलीका झूलाडोल ऊपर-नीचे आने-जानेके लिये है। इस कार्यालयमें देशका प्रत्येक कागज बड़े यत्नसे रक्खा गया है। कागजोंको आग आदिसे बचानेका पूरा प्रबन्ध है। इस दफ्तरमें मगध-सम्बन्धी अंग्रेजी शासनहीके कागज नहीं, मुसलमान-कालकी भी बहुत-सी सनदें आदि इकट्ठीकी गई हैं। पटनाकी सबसे सुन्दर इमारत अशोक-भवन है। इसका नक्शा नालन्दाके वसुबन्धु-भवनहीका-सा है, किन्तु इसकी शोभा उससे और अधिक है। इसमें सोने और संगमरमरका काम खूब देखनेमें आता है। विस्तार भी इसका 'वसुबन्धु-भवन' के इतना ही है। रंग-मंचके ऊपर बड़े-बड़े स्वर्णाक्षरोंमें लिखा है, 'एषे च मुख मुते विजये देवन प्रियस यो ध्रम विजयो।'

भारतके प्रजातंत्र

पटनासे चलकर यद्यपि मैं वर्तमान भारतके सभी प्रजातंत्रमें दो-दो चार-चार दिन दिये, किन्तु सभी जगहोंकी बस्ती, रहन-सहन एक-सा ही देखा। यद्यपि मैं रोज अपने रोजनामचेमें अपने आस-पासकी चीजोंके विषयमें लिखता गया हूँ, किन्तु यहाँ उसका उद्धरण करना पुनरुक्त मात्र समझ छोड़ देता हूँ। अपनी यात्रा-क्रमसे केवल सरसरी तौरसे छोटे-मोटे परिवर्तनोंहीका संक्षिप्त विवरण देता हूँ।

पटनाके साथ ही मगध प्रजातन्त्रको छोड मैं काशि प्रजातन्त्रके बनारसमें गया। और परिवर्तनोंके साथ बनारसने भी बड़ा परिवर्तन

आया है। न वह काशीकरवटकी करवट है; न कचौड़ी-गली, न उसकी कचौड़ी। गलियोंका तो एकदम नाम ही नहीं है। बड़ी चौड़ी-चौड़ी सड़कें हैं। खुली हवादार जगहोंमें वही मकानोंकी शोभा है, जो पहले बतलाई जा चुकी है। यदि आज कोई आदमी बीसवीं शताब्दीके किसी मकानको ढूंढ़ना चाहे, तो नहीं मिल सकता। मुझे और भी उदासी मालूम हुई, जब मणिकर्णिका, दशाश्वमेध आदि पूर्वके गुंजान घाटोंपर गया। यद्यपि स्नानके अवसरपर अब भी बहुत-से स्नान करनेवाले आते हैं, सीढ़ियाँ-पहलेसे भी सुन्दर और साफ हैं; बिजलीकी ताकतसे चलनेवाली कुछ नावें भी गंगामें सपाटें मारती दिखाई पड़ती हैं, किन्तु अब वह घाटियों और पण्डोंकी चहल-पहल कहाँ? अब वह 'गुरु-गुरु' की कहनाई और कुंडी-सोटेकी रगड़ाई कहाँ? नाइयों और मालियोंका भी पता नहीं। पता कैसे हो, इस समय तो जब पैसादेवहीका पता नहीं, तो उनके अनुचरोंका ठिकाना कहाँ? न अब दशाश्वमेधकी सट्टी है, न विशेश्वरगंजका गोला, ससाँड़ों-मुष्टंडोंका पता। न अब तत्कालीन समाजकी मारी हतभागिनी स्त्रियोंके दालमंडीके कोठे। लोगोंके रहनेके मकान वही एक-महले। ऐतिहासिक स्थानोंके चारों ओर खूब हरी-हरी खुली जगह दिखलाई पड़ती है। मंदिरोंको अब एक ऐतिहासिक चिह्न समझ सुरक्षित रक्खा गया है। रुपये-पैसोंका तो चढ़ावा सम्हालना नहीं है। सारे बनारसमें इस समय केवल पचीस सहस्त्र नर-नारी निवास करते हैं, जो यदि पुराने मकान होते, तो एक कोनेहीमें आ जाते, किन्तु चौड़ी सड़कों और एक-महले मकानों और फूलों आदि के कारण पुराने बनारस-भरमें फैले हुए हैं।

बनारसके पास दो और प्रसिद्ध बस्तियाँ हैं, एक तो बरना के उस पार तीन कोसपर 'ऋषिपतन मृगदाव'—जिसे पहले सारनाथ कहा करते थे—दस हजार आदमियोंकी बस्ती है। यहाँ अतिथि-विश्राम बहुत दूर तक बने हैं। बुद्धवादी बुद्धके सर्वप्रथम यहीं उपदेश करनेसे इसका माहात्म्य भारी है। सारे भूमंडल के नर-नारी यहाँ आते हैं। स्थान अब बहुत

रमणीय हो गया है। पुराने ध्वस्तप्राय स्तूप बिल्कुल नये बन गये हैं। दूसरा स्थान है, अस्सी उस पार काशी-विश्वविद्यालय। पहलेसे बहुत दूर तक इसका विस्तार है। अब पुरानी पाठशालायें तथा पंडितों की गृह-पाठशालाएँ तो हैं नहीं, किन्तु इससे विद्या-प्रचारमें कोई कमी नहीं है। सभी विद्याओंका अध्ययनाध्यापन पूर्वसे भी अधिक व्यवस्थित रूपमें काशी-विश्वविद्यालयमें होता है। इसकी गणना भूमंडलके उच्चश्रेणीके विश्वविद्यालयोंमें है। साहित्य और दर्शनमें उसकी बड़ी ख्याति है।

काशी प्रान्तकी राजधानी बनारस है। गेहूँकी खेती तथा आम, अमरूद, बैरके बागोंकी यहाँ अधिकता है। खासकर बनारस जिलेमें उपरोक्त फल बहुत होते हैं।

इसके अतिरिक्त चीनी भी इस प्रान्तमें बहुत होती है। पहलेसे नहरें यहाँ बढ़ गई हैं, किन्तु आबादी घट गई है।

इन्द्रप्रस्थ, वत्स, पांचाल, सूरसेन, मत्स्य, कुरु स्वतंत्र गण हैं। सूरसेन और मत्स्यमें बीसवीं शताब्दीकी अनेक रियासतें भी सम्मिलित हैं। अब उन रियासतोंका कुछ भी चिह्न नहीं रहा। भारतकी राजधानी दिल्ली है; किन्तु खास शहरमें पचास ही हजारकी बस्ती है। स्वच्छता-सुन्दरतामें बढ़ी-चढ़ी हैं। पुरानी इमारतें खूब सुरक्षित अवस्था में हैं। गेहूं, चीनी, घी यहाँसे और जगहोंमें भी जाता है। तराईकी ओर कागजके बहुतसे ग्राम हैं।

पंजाब, कश्मीरमें भी अनेक प्रजातन्त्र हैं। एक की राजधानी लाहौर है। तक्षशिला विद्यालय फिर अपनी कीर्तिको लौटा पाया है। आयुर्वेद-शास्त्रमें उसकी ख्याति सम्पूर्ण भूमण्डलमें है। गेहूँ तथा और अनाज, एवं चीनीके अतिरिक्त यह देश मेवें बहुत पैदा करता है। उत्तर तरफ पर्वतीय जनपदोंमें भेड़ोंके बहुतसे ग्राम हैं। ऊनी कपड़ोंके बहुतसे बड़े-बड़े कारखाने हैं। इसी और बिजली उत्पन्न करनेके भी बहुतसे स्थान हैं।

राजस्थान—इसमें पुराने राजपूतानेकी सारी रियासतोंके देश सम्मिलित हैं। सबसे भारी परिवर्तन अनेक रियासतोंके एक होनेके अतिरिक्त मरुभूमिका हरे-भरे मैदानके रूपमें परिणत होना है। सिन्धकी बड़ी नहरने बीकानेरके पानी बिना जलकर बालू हो गये कलेजेको ठंढाकर यह परिवर्तन किया है। अजमेर इसकी राजधानी है।

सिन्धु—पैदावार फल और अनाज दोनोंहीकी है। राजधानी करांची, जहाज और विमान दोनोंका बड़ा अड्डा है। यहांसे मैं सौराष्ट्र, गुजरात, मालव, विदर्भ और महाराष्ट्रमें गया। तीनोंमें कपासकी खेती बहुत अधिक होती है। कपड़ोंके कई बड़े-बड़े कारखाने हैं। पुरानी हैदराबाद रियासत, उत्तर महाराष्ट्र, दक्षिण महाराष्ट्र, कर्नाटक और आन्ध्र इन चार प्रजातन्त्रोंमें बंट गई है। इन प्रान्तोंमें भी कपास और कपड़ोंके कारखाने हैं, किन्तु चावल, चीनीकी पैदावार बहुत है। द्रविड़ और केरलके अतिरिक्त लंका भी अब भारतहीमें सम्मिलित है। इनके अतिरिक्त उत्कल, बंग, आसाम, और हिमालय आदि गण भारत के हैं। सभी जगहोंकी व्यवस्था-अवस्था बहुत ही सुन्दर है। निवासी आनन्दित तथा बसुन्धरा बसुन्धरा है। जगह-जगह बहुतसे विद्यालय और विश्व-विद्यालय हैं।

वर्तमान जगत्से उठ गई चीजें

पहले किसी प्रकार भी धनी बननेकी बीमारीका बड़ा प्रकोप था। उस समय लोगोंको ऐसा करनेकी स्वाधीनता भी थी। उस समय किसी वस्तुका मूल्य राष्ट्रीय आवश्यकता पर निर्भर नहीं था। धनकी इच्छावाले धनिक बातकी कब परवाह करने लगे थे, कि अमुक व्यवसायसे देशका श्रम तथा जीवन बर्बाद होगा, या सार्थक? वह तो यह देखते थे कि बाजारमें मांग किस चीजकी है। बस, उसीकी तैयारीके लिये बड़े-बड़े कारखाने खोल

देते थे, जिनमें लाखों आदमी काम करते थे। शराब, सिगरेट, अफीम यद्यपि हानिकारक वस्तुयें थीं, किन्तु उनकी उपजके लिए लाखों आदमी और लाखों बीघे भूमि बझी रहती थी। भला आजकल वह बात कहाँ चल सकती थी ? यहाँ तो सिद्धान्त ठहरा, जीवनकी सभी आवश्यक हानिकारक, आनन्दप्रद सामग्रीके यथेष्ट संग्रहमें जहाँ तक हो सके, कम-से-कम समय लगाया जाय, ताकि अवशिष्ट समय को लोग अपनी इच्छानुसार अपने ईप्सित कार्योंमें लगा सकें। पहले जैसे दरभंगा और मुजफ्फरपुर जिलोंकी बहुत सी भूमि तम्बाकू पैदा करनेमें लगी रहती थी, अब वहाँ तम्बाकू का नाम नहीं। सिगार, सिगरेट, बीड़ियोंके कारखानों-का पता नहीं। शराब, अफीमही नहीं, गाँजा, भाँग, चरस, ताड़ी आदि कितनी ही वस्तुयें आजके संसारमें पढ़कर तथा वस्तु-संग्रहालयोंही-में जाकर देखी जा सकती हैं। चाय, काफी, कहवा भी अब व्यर्थका व्यसन समझा जाकर विदा हो चुका है। खानेमें छोटे-बड़े आदमीका भेद न होनेसे साँवाँ; कोदों, मँड़ुआ (रागी), मोटे चावल आदि कितने निम्न श्रेणीके अन्न नहीं बोये जाते। खानेके लिए फल, अनाज जो कुछ भी पैदा किये जाते हैं उत्तम श्रेणी के। कपड़े-लत्ते, घर-द्वार, सवारी, बार, बरदारीमें भी यही बात है।

पैसेका नाम उठ जाने तथा वैयक्तिक सम्पत्तिके न रह जानेसे फल-फूल, खेती, काल-कारखाना सब कुछ राष्ट्रीय है; और इसलिए अब उतने कानूनोंकी भी भरमार नहीं। इन्कमटैक्सका कानून, बन्दोबस्त, कानून, कोर्टफीस, आबकारी, काश्तकारी, लगान, ज्वाइंट-स्टाक-कम्पनी आदि-आदि सैकड़ों कानूनोंका अब काम ही नहीं है। दीवानी मामलोंकी जड़ ही खतम हो गई, क्योंकि धन-धरती किसी व्यक्तिकी है ही नहीं। फौजदारीके कानूनका आकार भी बहुत घट गया है, क्योंकि धन-धरतीके अपहरण-विषयक चोरी डकैती आदि अपराध अब सम्भव ही नहीं। एक व्यक्तिका दूसरे व्यक्तिको शारीरिक या मानसिक हानि पहुँचानेका कारण

वर्तमान जगत्से उठ गई चीज

शताब्दी में राष्ट्रको बहुत युद्ध करना पड़ा है, तब विजय मिली। ऐसे सब रोगियों (नर-नारी दोनों) को औषधादि प्रयोगसे सन्तानोत्पत्तिके अयोग्य बना दिया गया था, और उन्हें हटाकर पृथक् रक्खा गया था। यह काम बहुत कठिन था, और हुआ भी एकदम नहीं, किन्तु जब एक बार राष्ट्रने अपने हितकी बातको समझ उसे करने की ठान ली, तो भला वह काम हुये बिना कब रह सकता है? यह राष्ट्रहीके प्रयत्नका फल है कि पृथ्वीपर अन्धे, लूले, लँगड़े, बहरे, गूँगे, काने, बुद्धिशून्य तथा विकृत-इन्द्रिय व्यक्ति खोजे नहीं मिलते।